सौर ऊर्जा की कहानी

अरविन्द गुप्ता
चित्रांकन: रेशमा बर्वे

सौर ऊर्जा की कहानी

अरविन्द गुप्ता

चित्रांकन : रेशमा बर्वे

प्रकाशक: एकलव्य
ई-10, शंकरनगर बी.डी.ए. कॉलोनी
शिवाजीनगर, भोपाल 462016 (मध्य प्रदेश)

सौर ऊर्जा की कहानी

अरविन्द गुप्ता
चित्रांकन: रेशमा बर्वे

वर्ष: 2011

नई साफ ऊर्जा

सूर्य सभी जगह है। भारत में तो ही जगह धूप-ही-धूप है। सूरज में तपने और पसीने से लथपथ होने की बजाए हम सूर्य की गर्मी से खाना पका सकते हैं और घर में उजाला ला सकते हैं। जमीन के 150-सेमी x 150-सेमी टुकड़े पर पड़ने वाली धूप की मात्रा 'फुल' पर जलती रसोई गैस के बराबर होती है! काश अगर हम इस धूप को एक बिन्दु पर इकट्ठा और केन्द्रित कर पाते। तो फिर हम बिना किसी ईंधन के खाना पका पाते!

भारत में अथाह धूप है। इसीलिए हमें ऊर्जा के इस स्वच्छ और शाश्वत स्रोत को पूरी गम्भीरता के साथ लेना चाहिए। देश के सबसे होशियार और जहीन लोगों को सौर-ऊर्जा पर शोध करना चाहिए। उन्हें दुनिया के सबसे सस्ते सोलर-सेल्स और सबसे बेहतरीन सोलर-चूल्हे डिजाइन करने चाहिए। भारत में आज भी 40 करोड़ लोग बिजली के बिना जीने को मजबूर हैं। सौर-ऊर्जा में दूर-दराज स्थित हरेक भारतीय घर को रौशन करने की सम्भावना है। यह सचमुच में सत्ता का विकेन्द्रीकरण और लोगों का सच्चा सशक्तीकरण होगा। तब सही मायने में गांधीजी का **लोगों के हाथों में सत्ता** का नारा साकार होगा।

पवन-ऊर्जा द्वारा हमने एक सही शुरुआत की है। एक निजी कम्पनी **सुझलोन** ने पिछले कुछ सालों में 6000 मेगावॉट की प्रदूषण मुक्त विद्युत क्षमता स्थापित की है। यह सब इसलिए हुआ क्योंकि भारत सरकार ने **पवन-ऊर्जा** सम्बंधी सही नीतियां बनाईं और निजी कम्पनियों को टैक्स आदि में छूट दी। **पवन-ऊर्जा** की कहानी को **सौर-ऊर्जा** के साथ भी दोहराने की सख्त जरूरत है।

बहुत से मित्रों के सहयोग के कारण ही इस पुस्तक का लिखना सम्भव हो पाया है। डा. अनर्बिन हाजरा और अनीश मोकाशी ने मुझे **सौर-ऊर्जा** पर शोध के लिए कई महत्वपूर्ण पुस्तकें भेजीं। प्रिया कामथ ने पुस्तक के शुरुआती चित्र बनाकर उसका आधार रचा। जब-जब **सौर-ऊर्जा** की पुस्तक पर बादल मंडराए तब-तब मेरी सहकर्मी डा. विदुला महिस्कर ने कहीं से सूरज की किरणें ढूँढकर उन बादलों को दूर किया।

मैं नीला शर्माजी का आभारी हूँ जिन्होंने इस पुस्तक की युवा डिजाइनर और चित्रकार रेशमा बर्वे को खोजा। रेशमा ने अपने संवेदनशील चित्रों से किताब में जान फूँकी है। मैं आशा करता हूँ कि बच्चे इस किताब को रुचि से पढ़ेंगे और उनका जीवन भी सूर्य की किरणों से रोशन होगा।

अपने मित्रों में मैं विशेष रूप से डा. अर्नब भट्टाचार्य, डा. सम्पत कुमार, अलभ्य सिंह, जोइस, नायला कोइल्हो, पवन अयनगार और राजकिशोर का आभारी हूँ। उन्होंने पाण्डुलिपि पढ़कर न केवल त्रुटियाँ सुझाईं पर बेहतरीन सुझाव भी दिए। अंत में मैं आयुका और नवाजीबाई रतन टाटा ट्रस्ट का तहेदिल से आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिन्होंने इस प्रकल्प के लिए सुविधाएँ और आर्थिक सहायता उपलब्ध कराई।

अरविन्द गुप्ता

02 अक्टूबर 2011
arvindtoys@gmail.com

बिग बैंग
सब कुछ बिग बैंग के बाद शुरू हुआ।
हमारी पृथ्वी 46 खरब वर्ष पुरानी है।
सबसे पहला ईंधन लकड़ी थी। जंगलों के कटने के बाद लोगों ने कोयला जलाना शुरू किया।
जल्द ही सतही कोयला खत्म हो गया। फिर खदाने गहरी हुईं। गहरी खदानों में पानी भरा।
सैम्यूल न्यूकोम्ब ने खदानों से पानी बाहर निकालने के लिए भाप का इंजन इजाद किया।
यह क्या है?
1769 में जेम्स वॉट ने पहला कामकाजी भाप का इंजन बनाया।
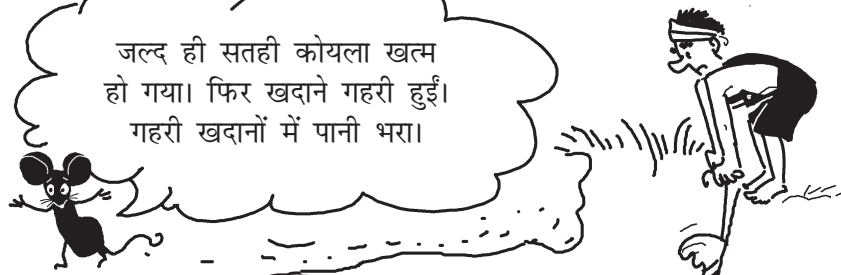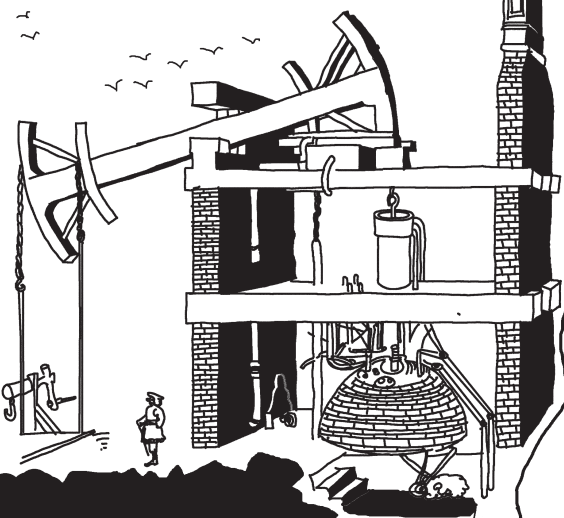
सस्ते कोयले और भाप के इंजनों से अर्थव्यवस्था को बल मिला और औद्योगिक क्रांति आई।
कोयला खदान
खदान मजदूरों को गहरा और गहरा खोदना पड़ा।
रेलगाड़ियों द्वारा कोयले की ढुलाई आसान हुई।
माइकिल फैराडे ने पहले विद्युत मोटर का आविष्कार किया।
निकोला टेसला ने आल्टरनेटिंग करन्ट (ए.सी.) का इजाद किया।
कोयले के जलने से भाप बनी और भाप से विद्युत टरबाइन चले।
एडविन ड्रेक ने पेनसिल्वेनिया में तेल का पहला कुँआ खोदा।
कार्ल डायमलर ने पेट्रोल पर चलने वाली पहली मोटरगाड़ी बनाई।
राईट बँधुओं ने पहली हवाई उड़ान भरी।
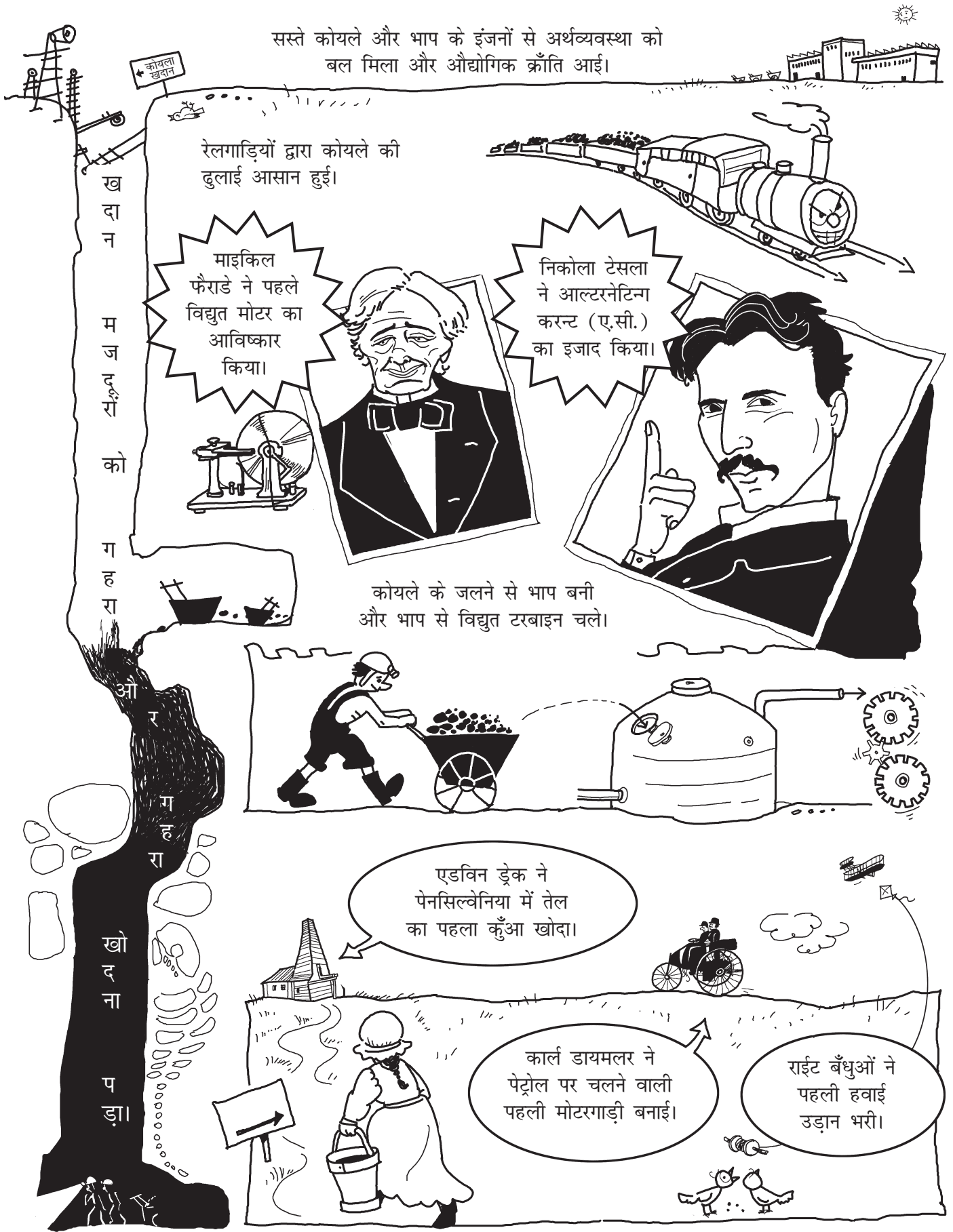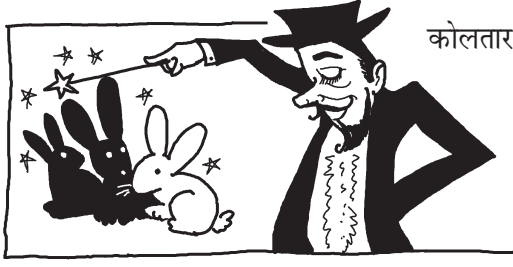
कोलतार और तेल से औद्योगिक रासायनों का निर्माण शुरू हुआ। आधुनिक दवाईयों ने रोगों की रोकथाम कर जीवनकाल को बढ़ाया।
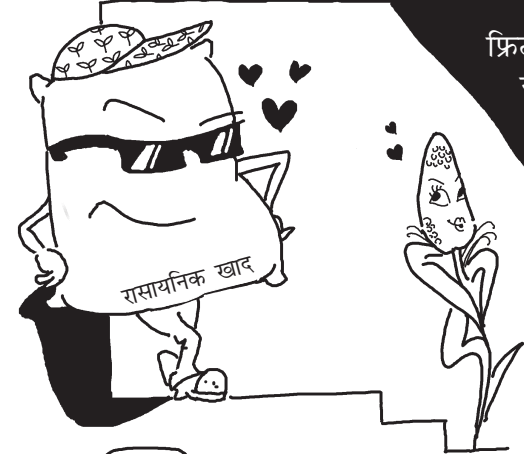
फ्रिट्ज हेबर और कार्ल बॉश ने कोयले और तेल से रासायनिक खाद बनाई।
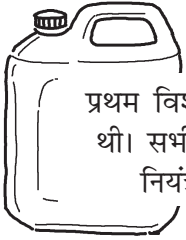
रासायनिक खाद

प्रथम विश्व युद्ध ईंधन की पहली लड़ाई थी। सभी युद्ध बेशकीमती संसाधनों के नियंत्रण के लिए लड़े जाते हैं।

रासायनिक खाद और ट्रैक्टरों ने अनाज की पैदावार को बढ़ाया और उससे बढ़ती आबादी को भोजन उपलब्ध हुआ।
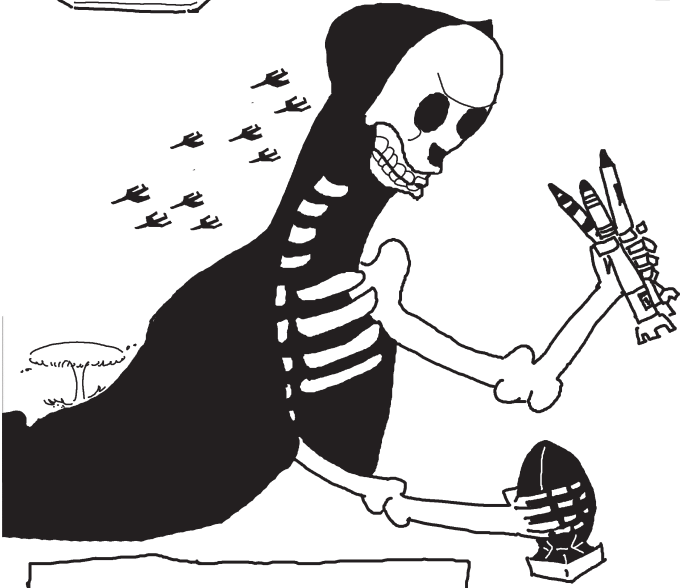
द्वितीय महायुद्ध ने दुनिया को मिजाइलें और एॅटम बम्ब भेंट किए।

महायुद्ध के बाद बच्चों की जन्म दर में अभूतपूर्व बढ़ौत्तरी हुई। दुनिया में आशा और उमंग का माहौल फैला। उत्पादन और निर्माण क्षमता में बहुत इजाफा हुआ।
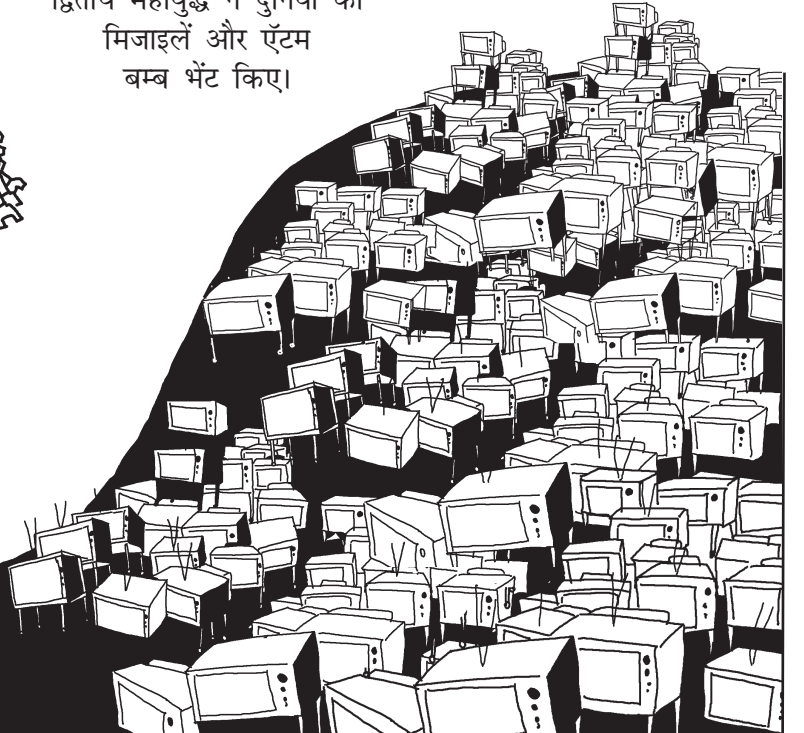
एसेम्बली लाइनें लोगों की जरूरतों से ज्यादा चीजें बनाने लगीं।
टेलीविजन अपने इश्तहारों द्वारा उपभोक्ताओं को रिझाने लगा।
पर जल्द ही ऊर्जा का संकट छा गया।
तेल के दाम आसमान छूने लगे।
1970 में अरब देशों ने अपने तेल उद्योग का राष्ट्रीयकरण किया।
तेल पर अपनी निर्भरता को देख लोग हैरत में पड़ गए।
ऊर्जा संकट ने पर्यावरण आन्दोलन को जन्म दिया। रैचिल कारसन की क्लासिक किताब **साइलेन्ट स्प्रिंग** ने कीटनाशकों द्वारा मिट्टी में मिलाए जहर के कहर को उजागर किया।
परन्तु जल्द ही तेल की कीमतें गिरीं और लोग ऊर्जा संकट को भूल गए।
बाजारू और योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था के बीच टकराव हुआ। इसमें बाजारू अर्थव्यवस्था जीती। 1991 में सोवियत रूस टुकड़ों में बँट गया।
अब हरेक इंसान पर्सनल कम्पयूटर खरीदने लगा।
वैश्वीकरण के दौर में चीन सस्ती मजदूरी के बलबूते सारी दुनिया के लिए चीजें बनाने लगा।
अचानक हर हाथ में मोबाइल दिखने लगा।
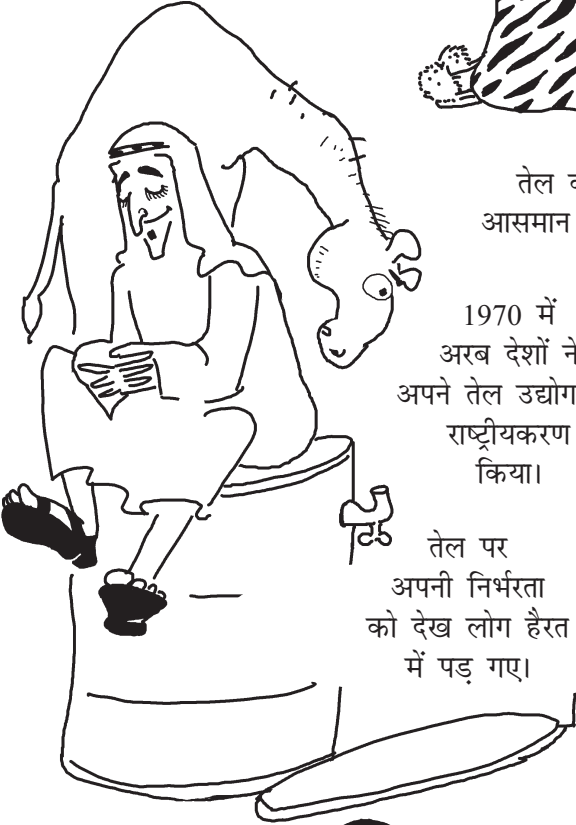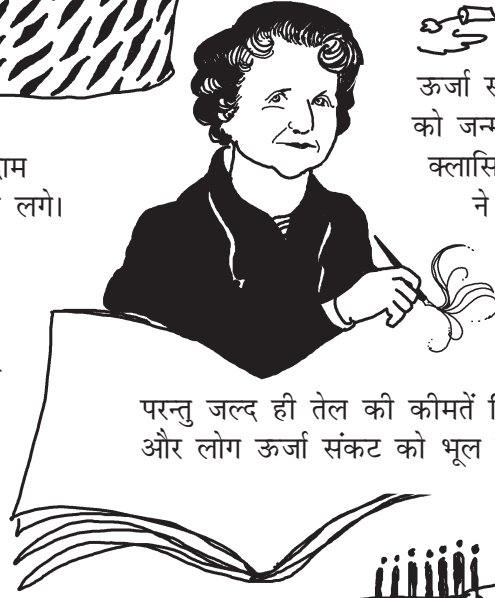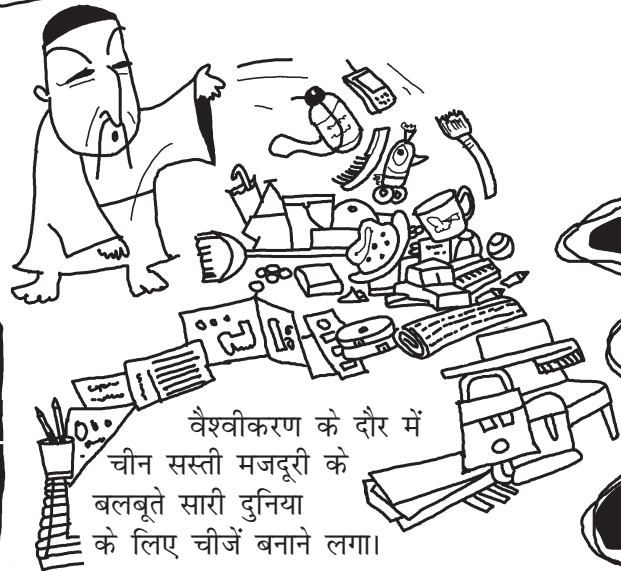
तभी विश्व तेल का उत्पादन गिरा! दुनिया का आधा कोयला जलाकर चीन ने अपना निर्यात जारी रखा।
पर भविष्य में उसे तेल और कोयला कहाँ से मिलेगा?
कोयला
दुनिया पर्यावरण की समस्याओं से घिरने लगी।
कार्बन–डॉयआक्सॉइड के बढ़ते स्तर से गर्मी का प्रकोप बढ़ने लगा है।
बाढ़ और सूखे का तांडव जारी रहा।
उपजाऊ मिट्टी नष्ट होने लगी।
विश्व का तापमान बढ़ने के कारण बर्फ की चोटियाँ पिघलने लगीं।
माउंट एवरेस्ट
प्राचीन जंगल तबाह होने लगे। जीव–जंतुओं की प्रजातियाँ सामान्य के मुकाबले 1000 गुना अधिक तेजी से लुप्त होने लगीं।
औद्योगिक कचरे से स्वच्छ पानी प्रदूषित होने लगा।
जमीन पर तेल खत्म होने के बाद अब तेल कम्पनियाँ गहरे समुद्र में तेल की ड्रिलिंग करने लगीं। परन्तु 2010 में मेक्सिको की खाड़ी में एक तेल कुएँ में विस्फोट हुआ जिससे...
....समुद्र का सर्वनाश हुआ।
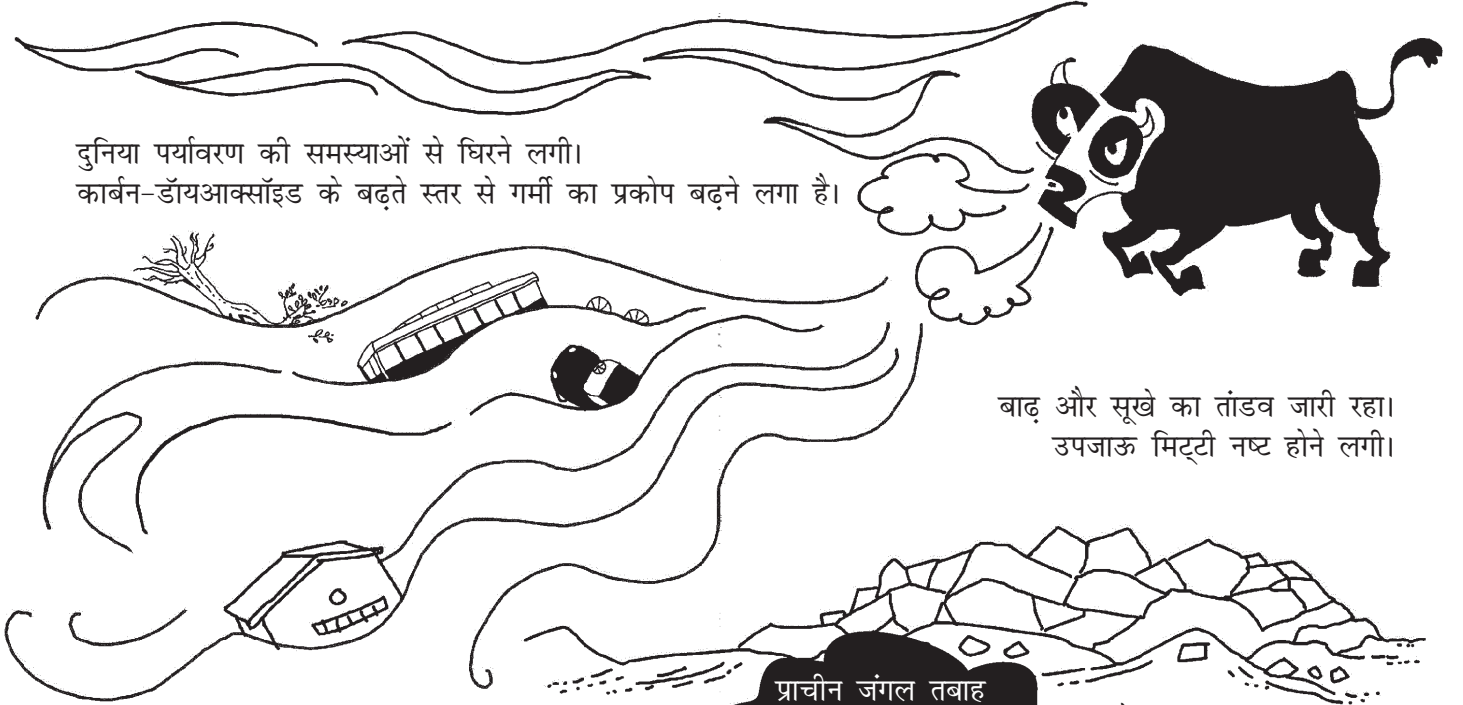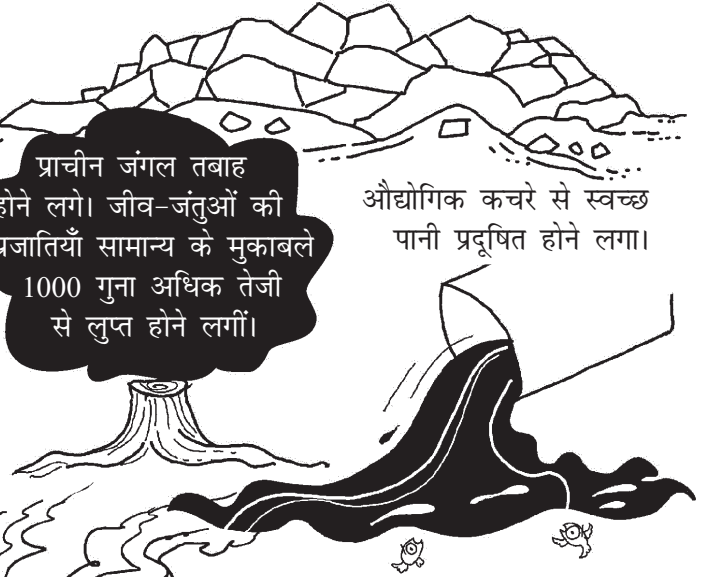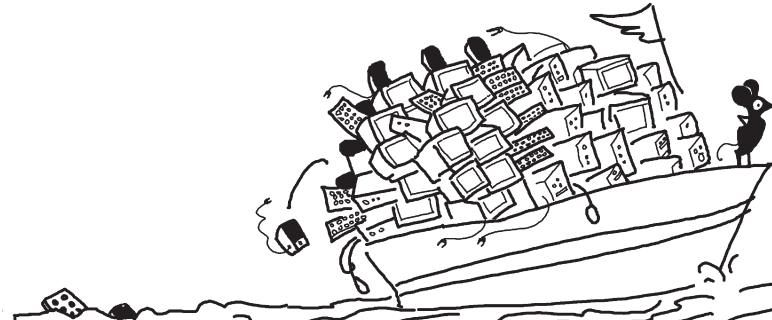
पश्चिमी देश अब **ज्ञान** के ठेकेदार बन गए। निर्माण के गन्दे काम, इलेक्ट्रॉनिक कचरा, कॉल सेंटर्स आदि तीसरी दुनिया के मुल्कों में ढकेले गए। उत्पादन में मंदी के बाद वित्तीय क्षेत्र फूल कर अर्थव्यवस्था का 40 प्रतिशत बन गया। अमरीका एक कैसीनो बन गया। शेयर बाजारों में भारी उथल-पुथल रही।
CASINO
2007 में पिछले 70 सालों की सबसे गहरी मंदी आई। चार साल बाद भी हम उसी में फँसे हैं। बेरोजगारी बढ़ रही है और पूंजी का अभाव है। अर्थव्यवस्था ढहने की कगार पर है।
भर्ती बन्द
200 साल के औद्योगिकरण में हमने काफी विकास किया है। परन्तु विकास की इस तेज गति और उपभोक्तावादी जीवनशैली को बहुत समय तक बरकरार नहीं रखा जा सकता है।
हम किस दिशा में अग्रसर हैं? हमारा भविष्य कैसा होगा?
क्या हम आबादी को बेलगाम बढ़ा सकते हैं? क्या हम पृथ्वी को लगातार नष्ट कर सकते हैं?
क्या हम वातावरण में लगातार और कार्बन फ़्रेंक सकते हैं?
हम कब तक पृथ्वी में रासायनों और कीटनाशकों का जहर घोलते रहेंगे?
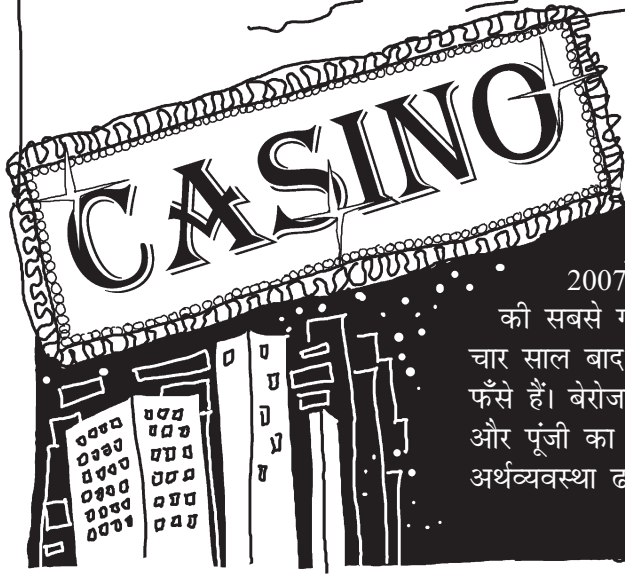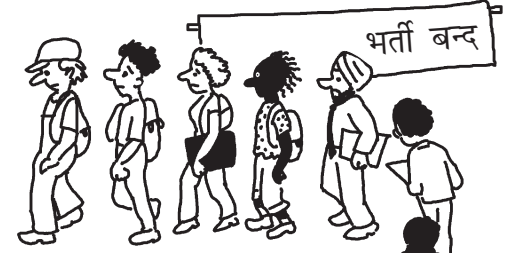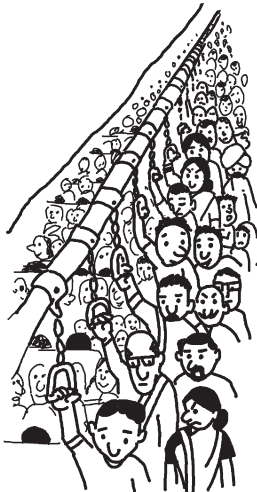
अफगानिस्तान और ईराक के युद्धों में अमरीका रोजाना करोड़ों डालर फूँकता है। इससे वो गहरे कर्ज में डूबा है।
उपभोक्तावादी संस्कृति बेलगाम बढ़ी है। पर लोगों की बढ़ती खपत और हविश की भी एक सीमा है।
अच्छा हो कि हम अपनी पुरानी गलतियों से सबक सीखें और उसके आधार पर आगे का रास्ता तय करें...
कोयले और तेल जैसे जीवाश्म ईंधन जल्द ही खत्म होंगे। उनके बिना 700 करोड़ लोगों का जीवनयापन कैसे चलेगा? हमें इसकी चिन्ता करनी है।
लकड़ी
साथ-साथ दूषित पर्यावरण की विरासत को भी सम्भालना है।
यानी प्रकृति जो भरपाई करती है हम उसी बजट के अन्दर संसाधनों का उपयोग करें।
क्या हम यह कर पाएंगे? हमारे पास इसके अलावा कोई दूसरा विकल्प नहीं है!
वैकल्पिक ऊर्जा के स्रोत महत्वपूर्ण हैं परन्तु अगले कुछ वर्षों में कोयले, तेल और गैस के बिना काम नहीं चलेगा...
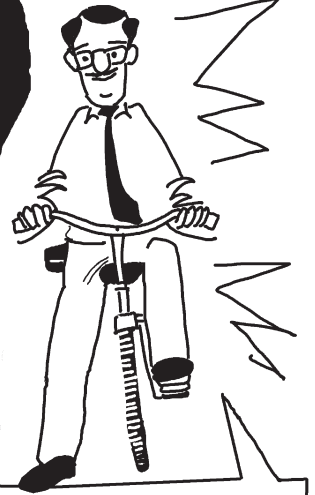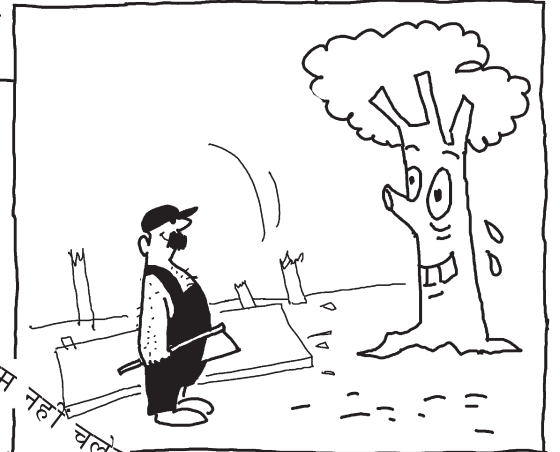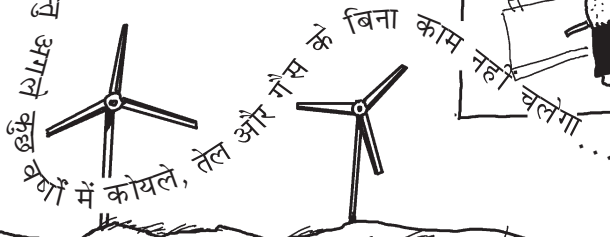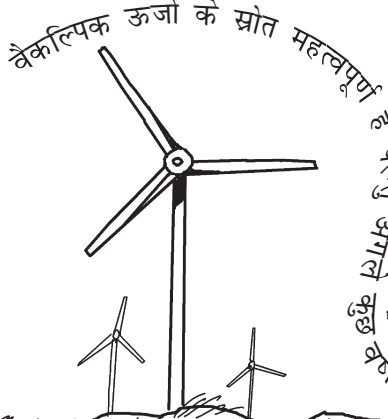
हमें अपनी मानसिकता
बदलनी पड़ेगी।
तेल **उत्पादन** की बात
हम ऐसे करते हैं जैसे वो
फैक्ट्री में बनता हो।
परन्तु केवल प्रकृति ही
तेल बनाती है।
हम उसे जमीन से
निकालकर बस जलाते हैं।

हमें सूर्य की शरण में
जाकर उसकी
कभी न खत्म होने वाली
शाश्वत ऊर्जा का
उपयोग करना चाहिए।
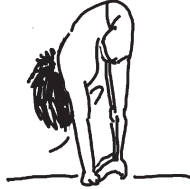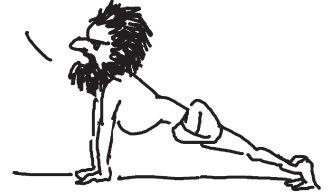
सूर्य की बदौलत ही पृथ्वी पर जीवन फला-फूला। पृथ्वी पर सूर्य प्रत्येक सेकण्ड अपार ऊर्जा की बौछार करता है। यह काम सूर्य अगले 50 खरब वर्ष तक करेगा। पेड़-पौधे भी धूप की किरणों को पकड़ने के लिए सूर्य की ओर झुकते हैं। धूप से ही पौधे अपना भोजन बनाते हैं।
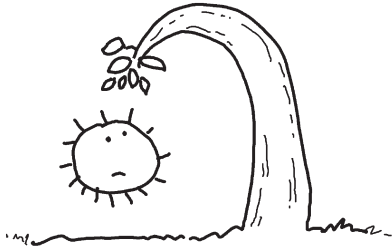
भगवान मानते थे।

वो सूर्य को दण्डवत कर

उसकी प्रार्थना करते थे।

प्राचीन काल में राजा–महाराजा खुद को सूर्य का वंशज मानते थे और सूर्यवंशी कहलाते थे।

कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कोर्णाक का निम्न शब्दों में वर्णन किया:

'यहाँ पत्थर की भाषा, मनुष्य की भाषा से कहीं सुन्दर है।'

तेरहवीं शताब्दी में उड़ीशा में बना कोर्णाक मन्दिर सूर्य भगवान को समर्पित है।

पत्थर से बना यह मन्दिर एक रथ के आकार का है। रथ के 12 पहिए हैं और उसे 7 जोशीले घोड़े खींचते हैं। कोर्णाक मन्दिर सूर्य देवता की राजसी छलाँग का प्रतीक है।

विभिन्न संस्कृतियों में सूर्य

रा मिस्त्रवासियों के प्रमुख भगवान थे। **रा** को सभी देवताओं में सर्वोच्च माना जाता था। उनका शरीर मनुष्य का था पर सिर बाज जैसा था। उनके सिर पर सूर्य का ताज था जिसे पवित्र नाग ने घेर रखा था।

जापान के सूर्य देवता अमातेरासू शुरू में गुफा में निवास करते थे। जब वो गुफा से बाहर निकले तभी दुनिया में प्रकाश फैला।

वेस मैगी की एक कविता

एक कागज का पन्ना लें
और उसे मोड़ें
उसे फिर मोड़ें
और दुबारा-दुबारा
फिर मोड़ें

छठवें-मोड़ पर कागज 1-सेंटीमीटर मोटा होगा।
11वें मोड़ पर
वो 32-सेंटीमीटर मोटा होगा,
और 15वें मोड़ पर वो 5-मीटर ऊँचा होगा।।
20वें मोड़ पर उसकी ऊँचाई 160-मीटर की होगी।
24वें मोड़ पर वो ढ़ाई-किलोमीटर ऊँचा होगा,
और 30वें मोड़ पर 160-किलोमीटर ऊँचा होगा,
35वें मोड़ पर वो 5000-किलोमीटर ऊँचा होगा,
और 43वें मोड़ पर वो चांद तक पहुँच जाएगा।
और 52वें मोड़ पर
वो कागज, पृथ्वी से सूर्य तक पहुँचेगा!
इसलिए एक कागज लें और उसे मोड़ें!

अगर पृथ्वी सूर्य की ऊर्जा को दिन-रात सोखती रही तो वो जल्द ही उबलने लगेगी। भाग्यवश, दिन में सोखी ऊर्जा से रात के समय पृथ्वी छुटकारा पाती है। इसलिए दिन में सोखी ऊर्जा और रात को छोड़ी ऊर्जा के बीच का संतुलन ही पृथ्वी के तापमान को एकदम ठीक-ठाक रखता है।

चँद्रमा की तुलना में सूर्य 400-गुना चौड़ा है। फिर वे दोनों पृथ्वी से एक-नाप के क्यों दिखते हैं?

क्योंकि चँद्रमा के मुकाबले सूर्य की दूरी पृथ्वी से 400-गुनी ज्यादा है।

यूनानी नुस्खा
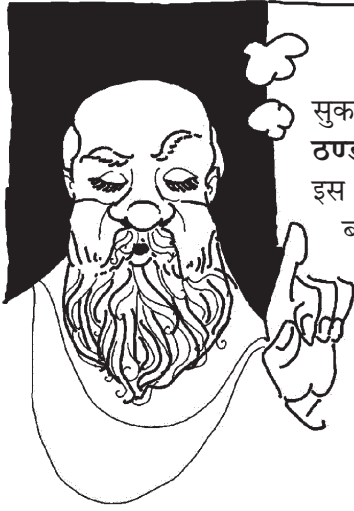
सुकरात के अनुसार: **आदर्श घर वो है जो गर्मियों में ठण्डा और जाड़ों में गर्म रहे।** पर 2500 साल पहले इस आदर्श को हासिल करना बहुत मुश्किल था। यूनानियों के पास जाड़ों में घर गर्म करने और गर्मियों में उसे ठण्डा रखने के लिए कोई कृत्रिम साधन नहीं था।
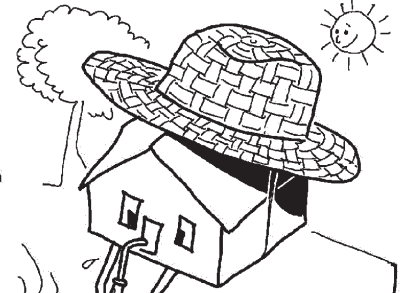
यूनान में खाना पकाने और घर गर्म करने के लिए लकड़ी की जबरदस्त माँग के कारण वहाँ जंगलों का सफाया हुआ। दूसरी ओर घर और जहाजों के निर्माण के लिए भी लकड़ी की जोरदार माँग थी। इसलिए ईसा पूर्वी 5वीं शताब्दी में यूनान के सभी जंगल कट गए। जंगल कटने के बाद वहाँ ऊर्जा के अन्य वैकल्पिक साधनों की खोज शुरू हुई।
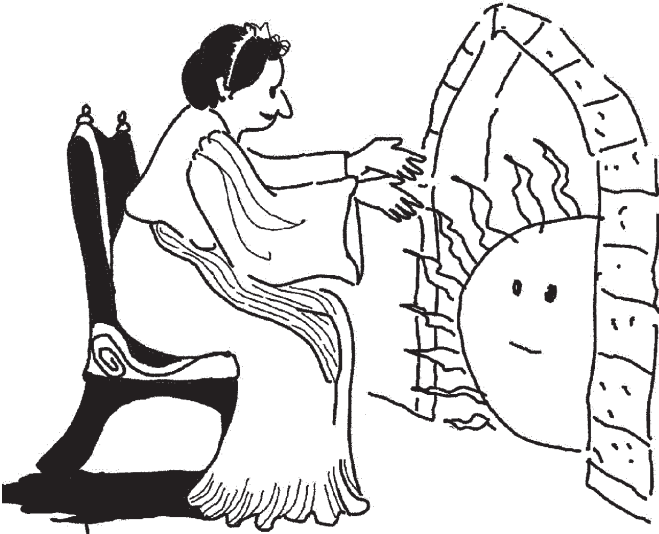
भाग्यवश वहाँ सूर्य की ऊर्जा मुफ्त में और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थी। जल्द ही यूनानियों ने अपने घरों को जाड़ों में सूर्य की ऊर्जा से गर्म करना और गर्मियों में उन्हें ठण्डा रखना सीखा। यूनान निवासी शायद दुनिया के पहले अग्रणी **सोलर-आर्किटेक्ट** (वास्तुशिल्पी) थे।

यूनानियों को मालूम था कि जाड़ों में सूर्य आसमान में नीचे रहता है और गर्मियों में वो सिर के ऊपर होता है।
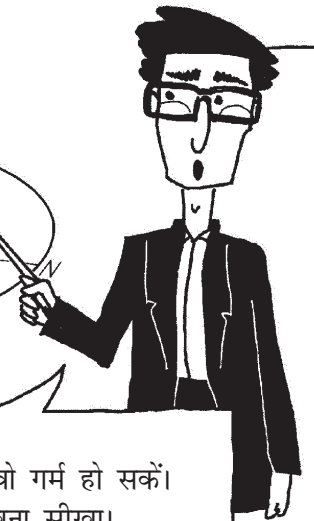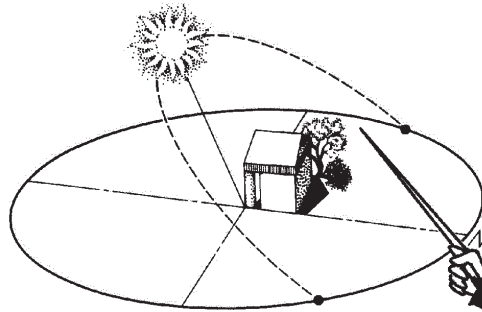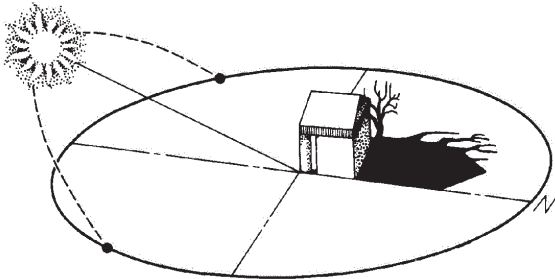
इसलिए उन्होंने अपने घरों का इस प्रकार निर्माण किया जिससे कि जाड़ों की धूप से वो गर्म हो सकें। छज्जों और दीवारों के नीचे आती छतों द्वारा उन्होंने गर्मियों में अपने घरों का ठण्डा रखना सीखा।

काँच की करामात

रोम निवासी तो यूनानियों से भी अधिक लकड़ी इस्तेमाल करते थे। वहां घरों और जहाजों के निर्माण के लिए भी लकड़ी की प्रचण्ड माँग थी। बड़े स्नानघरों और राजसी घरों में भी बहुत लकड़ी खर्च होती थी। जब रोम में लकड़ी की बहुत कमी हुई तो उन्हें झक मारकर यूनानियों के अनुभवों से सीखना पड़ा। रोमवासियों ने यूनानियों की सिर्फ नकल ही नहीं की, उन्होंनें अपनी अकल से सौर-तकनीकों को बहुत आगे बढ़ाया।

ईसा के बाद की पहली शताब्दी में रोमवासियों ने पारदर्शी अबरक (माईका) को खिड़कियों पर लगाया। इससे सूर्य की धूप तो घर के अन्दर आती परन्तु बारिश, बर्फ और ठण्डी हवा बाहर ही रहती। उन्होंने अपने घरों को सूर्य की दिशा में उन्मुख किया।

रोमवासी काँच के उपयोग द्वारा घर को गर्म करने वाले दुनिया के सबसे पहले लोग थे। सूर्य की धूप काँच में से अन्दर आकर जाड़ों में घर को गर्म करती। क्योंकि यह गर्म हवा खिड़की से बाहर नहीं जा सकती थी इसलिए वो घर के अन्दर के तापमान को बढ़ाती थी।

रोमवासियों ने ग्रीनहाउस और हम्माम - सार्वजनिक स्नानग्रह भी बनवाए। रोम पहला देश था जिसने अपने देशवासियों को सूर्य के अधिकार का कानूनी हक दिया।
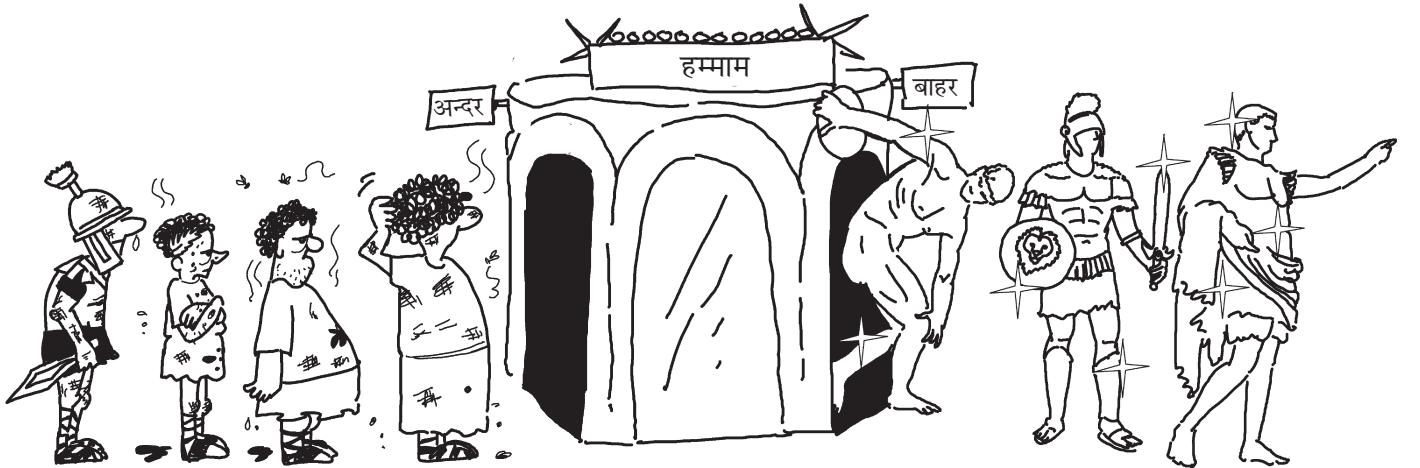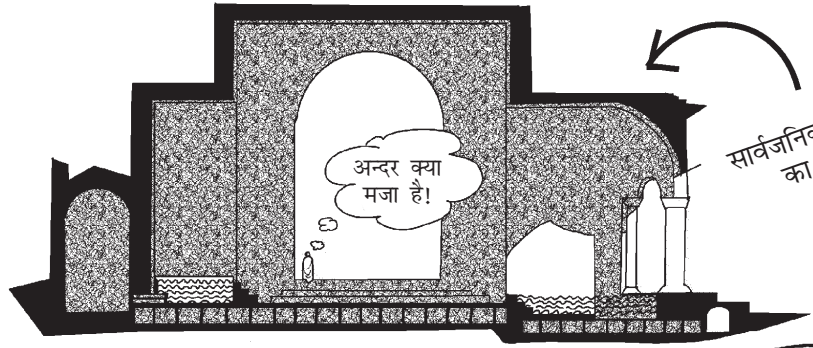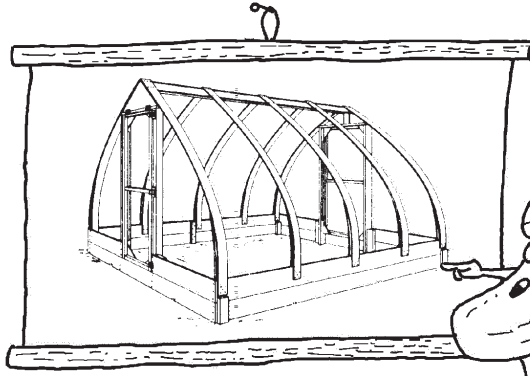
रोम के बादशाह टिबेरस को खीरे बहुत पसन्द थे। पूरे साल उनके लिए खीरे कहां से लाएं? पर वहां के मालियों ने इसका एक अनूठा हल खोजा। उन्होंने खीरों को पहियों वाली ट्रालियों में बोया जिससे कि वो उन्हें ढकेल कर धूप में ले जा सकें। सर्दियों में वो पौधों को पारदर्शी कवच से ढंककर सूर्य की गर्मी को कैद करते थे।

रोमवासी सूर्य की पूजा करते थे।
डाक्टर भी सूर्य को सेहत के लिए बहुत अच्छा मानते थे।

क्या सूर्य की किरणों को एक छोटे से क्षेत्र में केन्द्रित किया जा सकता है? इससे ढेर सारी ऊर्जा एक छोटे क्षेत्र में एकत्रित हो वहाँ का तापमान बढ़ाएगी। रोमवासियों ने यह भी खोजा कि धातु का एक अवतल (अन्दर की ओर मुड़ा) चमकीला टुकड़ा सूर्य की किरणों को एक बिन्दु पर केन्द्रित करता है।

इसे एक सरल प्रयोग द्वारा समझा जा सकता है। पुरानी हवाई चप्पल में तीन छेद कर उसमें तीन पेन्सिलें धंसाएं। चप्पल पर लम्बवत पेन्सिलें बिल्कुल समतल दर्पण पर टकराती किरणों जैसे दिखेंगी। चप्पल को अन्दर की ओर दबाने पर पेन्सिलें एक बिन्दु यानी 'फोकस' पर आकर मिलेंगी।
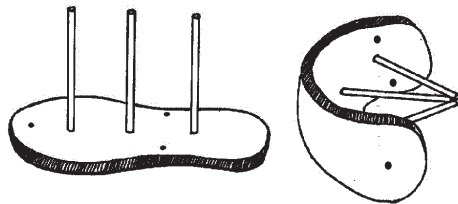
लैटिन में **फोकस** का मतलब होता है **अंगीठी**।
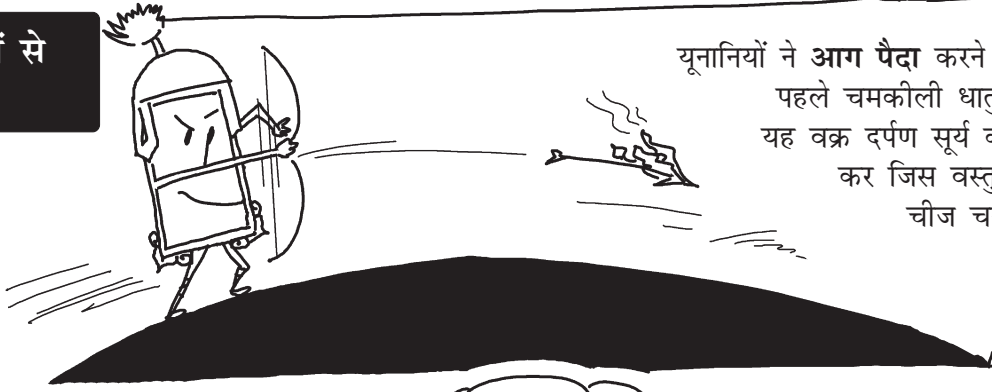
दर्पणों से आग
यूनानियों ने **आग पैदा** करने वाले दर्पणों को सबसे पहले चमकीली धातु की चादर से बनाया। यह वक्र दर्पण सूर्य की किरणों को इकट्‌ठा कर जिस वस्तु पर केन्द्रित करता वो चीज चन्द सेकण्डों में जलकर खाक हो जाती।
शुरू के वक्र दर्पण अर्धगोले थे। परन्तु वो एक बिन्दु पर किरणें केन्द्रित नहीं करते थे। ईसा से 230 वर्ष पूर्व एक यूनानी गणितज्ञ दोशिठयूज ने खोजा कि अर्धगोल के मुकाबले परवलय आकार के दर्पण इसमें अधिक कारगार होते थे।
दोह–शिठ–यूज
परवलय के आकार के दर्पण अर्धगोल नहीं होते – दरअसल वो मुर्गी के आधे अण्डे के छोटे भाग जैसे होते हैं।
अंग्रेजी का शब्द **लेन्स** का उद्‌गम उसके आकार से आता है। अंग्रेजी में दाल को **लेन्टिल** बुलाते हैं।
अवतल और उत्तल लेन्सों का आकार कुछ–कुछ दाल के दानों जैसा होता है।
टार्च के रिफ्लेक्टर का आकार भी परवलीय होता है।
यूनानी गणितज्ञ आर्किमेडीज दर्पण बनाने में बहुत कुशल थे। ईसा पूर्वी 214 में रोमवासियों ने सिसिली के तटवर्ती शहर सायराकूज पर आक्रमण किया। एक कथा के अनुसार तब आर्किमेडीज ने दर्पणों द्वारा सूर्य की किरणों को दुश्मन के जहाजों पर केन्द्रित कर उन्हें जलाकर भस्म किया। पर यह कहानी महज एक कल्पना भी हो सकती है।
अल–हातिम की पुस्तक 'ओपटिकेय थिसॉरस'
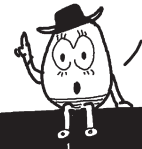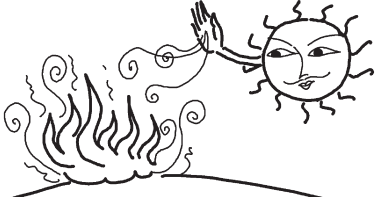
दर्पण से आग के प्रयोग

चेतावनीः इस प्रयोग को त्वचा और आंखों पर न करें!

आग जलाने वाले दर्पणों का शायद युद्ध में कभी उपयोग नहीं हुआ परन्तु धार्मिक अनुष्ठानों, यज्ञ आदि में उनका भरपूर उपयोग हुआ। सूर्य की आग को छुआछूत से मुक्त एकदम **पवित्र और उत्तम** माना जाता था।

काले धागे से एक कील को बोतल में लटकाएँ। एक आवर्धक काँच से सूर्य की किरणों को बाहर से केन्द्रित कर धागे को जलाएँ। सफेद धागे से यह प्रयोग असफल होगा।

जब यूरोप के देश अँधकार युग में थे तब अरब देशों में विद्या का बोलबाला था। ग्यारहवीं शताब्दी में काहिरा में बसे अरब विद्वान अल-हातिम ने दर्पणों पर बहुत प्रयोग किए और उनके बारे में सविस्तार लिखा।

आप चाहें तो आवर्धक काँच से धूप केन्द्रित कर किसी कागज को जलाकर अपना नाम भी लिख सकते हैं।

तेरहवीं शताब्दी में एक ईसाई पादरी रोजर बेकन ने अल-हातिम की पुस्तक पढ़ी।

सोलहवीं शताब्दी में लियोनार्दो द विन्सी ने दर्पणों को युद्ध की बजाए शान्ति के लिए उपयोग करने की दलील दी। उसने अवतल दर्पणों की मदद से पानी भी गर्म किया।

रोजर बेकन की रुचि आग जलाने वाले दर्पणों से हथियार बनाने में थी। उन दिनों चर्च बस आध्यात्मिक अटकलों में व्यस्त रहता था। चर्च में सिर्फ स्वर्ग, नरक और आत्मा सम्बंधी चर्चाएं होती थीं। इसलिए किसी **भौतिक** चीज का निर्माण - चाहें वो मौत के हथियार ही क्यों न हों फालतू आध्यात्मिक अटकलें लगाने से बेहतर था। इसके लिए उन्हें असली जिन्दगी में वास्तविक चीजों से प्रयोग करना जरूरी था।

सत्रहवीं शताब्दी में बहुत से विद्वानों और वैज्ञानिकों ने बड़े दर्पणों के साथ प्रयोग किए। रचनात्मक कलाकारों ने दर्पणों से इत्र तक बनाया। उन्होंने गुलाब की पँखुड़ियों को पानी भरे काँच के कलश में भिगोया। फिर कलश को एक बड़े दर्पण के **फोकस** पर रखा। धीरे-धीरे पानी गर्म होकर उबला और पँखुड़ियों के रस का इत्र बना। अब दर्पण कुछ खुशबूदार काम करने लगे।
जितना बड़ा दर्पण होगा वो उतनी ही अधिक धूप एकत्रित कर एक बिन्दु पर केन्द्रित करेगा। परन्तु बड़े दर्पण बनाना कोई आसान काम नहीं था। बड़े दर्पण का आकार अपने ही भार से विकृत हो जाता था। इसलिए 17वीं शताब्दी के अन्त में पीटर होईसन ने एक बड़ा दर्पण छोटे-छोटे दर्पणों को जोड़कर बनाया। इस दर्पण से दूर रखी लकड़ियों का ढेर एक पलक में जल गया!
परन्तु जंग के सूरमा अपनी हरकतों से बाज न आए। दर्पणों को युद्ध में इस्तेमाल करने की उनकी ललक लगातार जारी रही।
इतालवी खगोलशास्त्री जियोवानी माजिनी ने उस समय उपलब्ध दर्पणों से सोना-चांदी और सीसे को आसानी से पिघला कर दिखाया।
दरअसल युद्ध में दर्पणों का कभी इस्तेमाल नहीं हुआ। तब तक बारूद का आविष्कार हो चुका था। बारूद दुश्मन को मारने और विनाश-विध्वंस के काम में कहीं ज्यादा असरदार था।
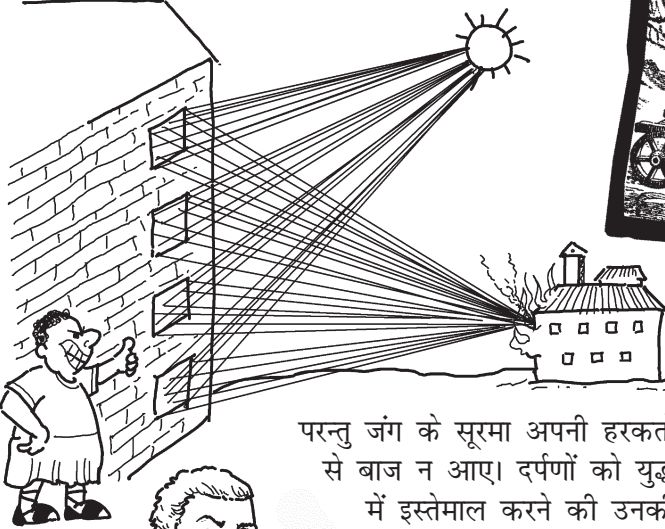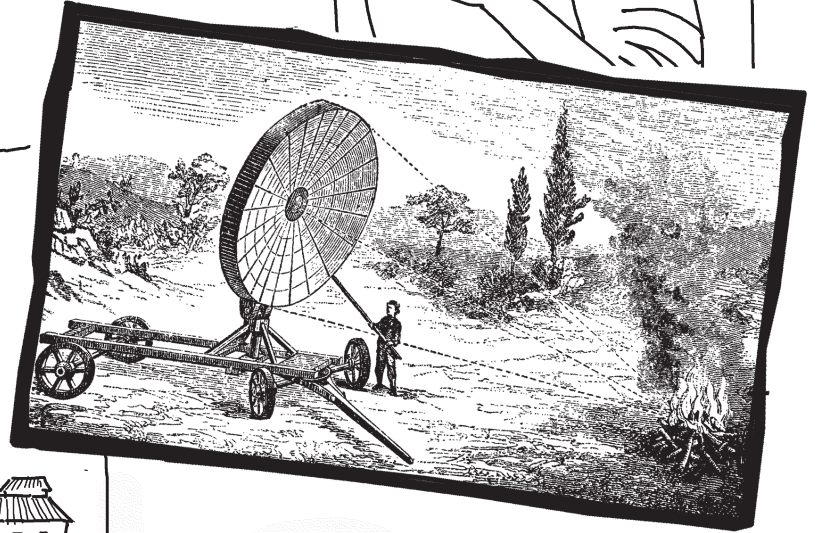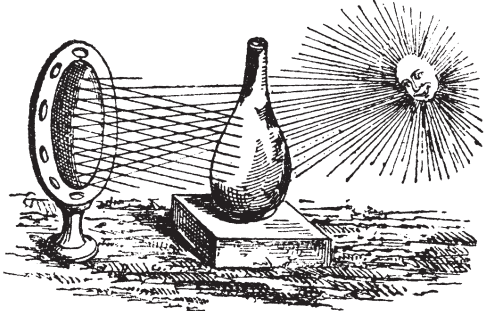
रूढ़ीवादी चर्च हमेशा से ही प्रयोग-विधि के खिलाफ था। वहां हमेशा आध्यात्मिक प्रश्नों पर चर्चा होती। उदाहरण के लिए: **एक पिन के सिर पर कितनी परियां नाच सकेंगी?**

जब एक मेहनतकश पादरी ने **आत्मा** की बजाए **शरीर** के पोषण के लिए फल उगाने शुरू किए तो उसे सूली से बाँधकर जला दिया गया। पर अन्त में विज्ञान ने धर्म की हठधर्मिता पर विजय हासिल की।

ग्रीनहाउस

... उन्होंने तिरछी, झुकी छतों पर पौधे उगाए। दक्षिण की ओर उन्मुख यह तिरछी दीवारें अधिक धूप एकत्रित करती थीं। इन झुकी छतों पर पौधे अच्छी तरह उगते थे।

यूरोप की कड़क सर्दी में लोगों ने ग्रीनहाउसों में सब्जियाँ और फल उगाना शुरू किए...
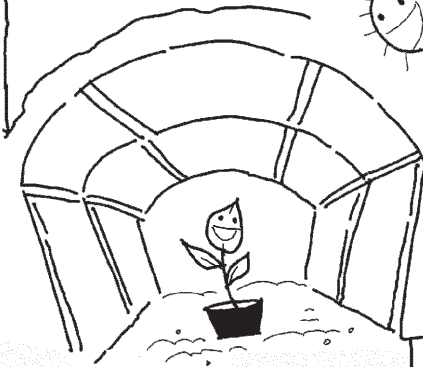
१८ वीं शताब्दी ग्रीनहाउस का युग बना
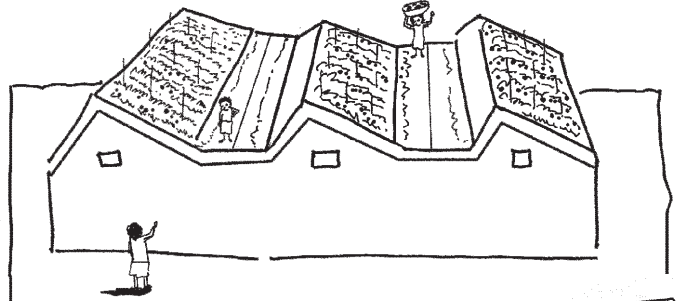
जल्द ही नेदरलैन्ड निवासी बेहतर ग्रीनहाउस बनाने लगे। इसके लिए उन्होंने डबल-ग्लास - काँच की दो परतों के बीच ऊष्मा-रोधक हवा का उपयोग किया।

पर जैसे लोगों के पास धन-सम्पत्ति बढ़ी वैसे ग्रीनहाउस की जगह मँहगी **कन्जरवेटरी** ने ले ली। **कन्जरवेटरी** अब पौधे उगाने का जगह न रह कर एक प्रदर्शनी की जगह बन गई। वो एक - ड्राइंग-रूम - मेहमानों की खातिरदारी की जगह बन गई। बैंगलूरू के लाल बाग में एक विशाल ग्रीनहाउस स्थित है।
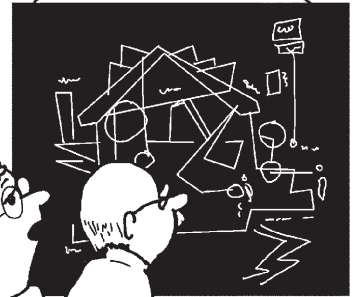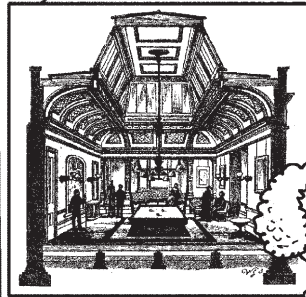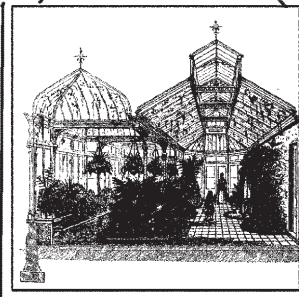
18वीं शताब्दी के ग्रीनहाउसों की प्रदर्शनी

यह तो ग्रीनहाउस नहीं है।

यह ग्रीनहाउस का ब्लूप्रिन्ट है।

कन्जरवेटरी में संचित सौर-ऊर्जा के कारण उसके आसपास के कमरे भी गर्म हो जाते थे।

सौर गर्म-बक्से

सूर्य की किरणें खिड़की के काँच से प्रवेश कर कमरे की हवा को गर्म करती हैं। उसी प्रकार धूप में खड़ी कार भी **ग्रीनहाउस** प्रभाव के कारण अन्दर से तपने लगती है।

1767 में एक स्विस इंजीनियर होरेस द सौसूर ने दुनिया का पहला सौर-चूल्हा बनाया। उसने एक छोटा ग्रीनहाउस बनाया जिसमें एक के अन्दर एक पाँच डिब्बे रखे।
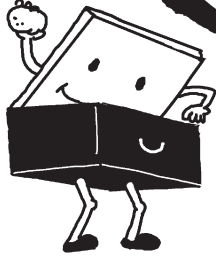
धूप में सबसे अन्दर वाला डिब्बा बहुत गर्म हो गया। उसमें रखे फल पक गए और उनका रस टपकने लगा। धूप काँच में से अन्दर गई और वहां उसे काले डिब्बों की सतहों ने सोखा।

प्रिज्म

एक्स-रे
पराबैंगनी
बैंगनी
नीला
हरा
पीला
नारंगी
लाल
अवरक्त
रेडियो तरंग

अदृश्य प्रकाश
दिखने वाला प्रकाश
अदृश्य प्रकाश
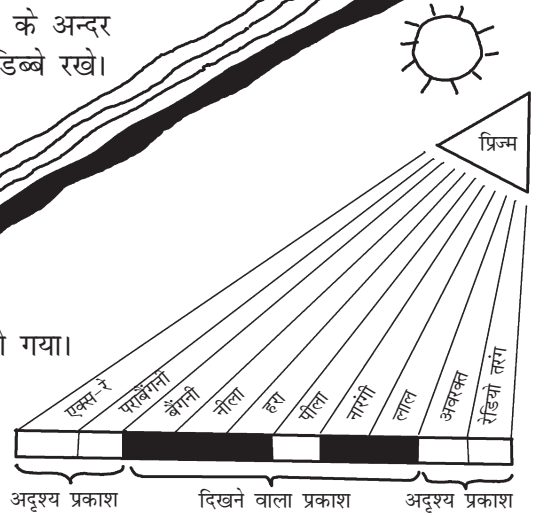
अवरक्त किरणें डिब्बे के अन्दर का तापमान बढ़ाकर भोजन को पकाती हैं। किसी सामान्य दिन में सूर्य के विकिरण का सिर्फ तीन-चौथाई भाग ही पृथ्वी तक पहुँचता है। पृथ्वी, सूर्य के प्रकाश को सोखकर उसकी ऊष्मा को रिहा भी करती है...

... यह ऊष्मा पृथ्वी के वायुमंडल के कवच को भेदकर बाहर नहीं जा पाती है - बिल्कुल सौर-चूल्हे की तरह।

सौसूर ने एक अनूठा प्रयोग किया। उसने अपने 'गर्म-डिब्बे' का तापमान दो स्थानों पर नापा - एक समुद्र स्तर पर और दूसरा बर्फ से ढँके पहाड़ के ऊपर। दोनों जगहों पर उसके 'गर्म-डिब्बे' ने समान तापमान दर्ज किया!
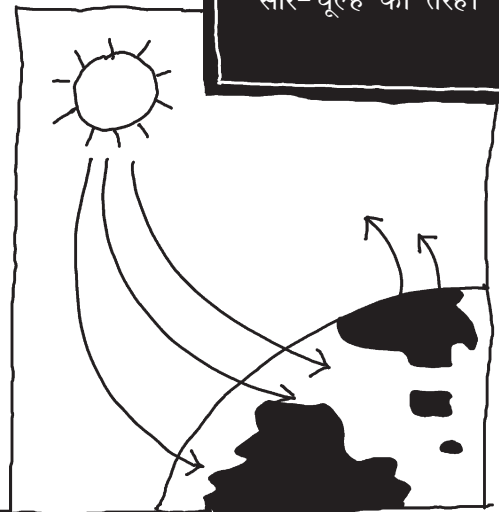
1830 में प्रसिद्ध खगोलशास्त्री सर जॉन हरशेल ने दक्षिण अफ्रीका स्थित केप ऑफ गुड होप में एक अभियान में भाग लिया। वहाँ के आबादी विहीन जंगलों में उन्होंने अपना भोजन एक जुगाड़ी सौर-चूल्हे पर पकाया...

....उन्होंने अण्डे भूने, गोश्त पकाया और शोरबा बनाया। गुजरते राहगीरों को सौर-ऊर्जा से पका खाना पसन्द आया और साथ में उनका भरपूर मनोरंजन भी हुआ।

हरशिल की कहानी ने खगोलशास्त्री सैम्यूल लैन्गले को प्रेरित किया। बाद में लैन्गले मशहूर स्मिथसोनियन इंन्सिटिट्यूट के प्रमुख बने। सौर-ऊर्जा के अध्ययन के लिए उन्होंने एक **गर्म-बक्सा** बनाया जिसे लेकर वो विटने पर्वत पर चढ़े। 1882 में उन्होंने अपने अनुभवों को **नेचर** पत्रिका में इन शब्दों में दर्ज किया:

'जैसे-जैसे हम पहाड़ पर चढ़े... वैसे-वैसे जमीन का तापमान गिरकर शून्य तक पहुँचा। परन्तु ताँबे का पात्र जिसके ऊपर दो तहें सपाट काँच की थीं में तापमापी का तापमान उबलते पानी के तापमान से ऊँचा उठ गया। यह बिल्कुल निश्चित था कि हम बर्फ में बैठकर मात्र सूर्य की धूप के सहारे पानी को उबाल सकते थे।'
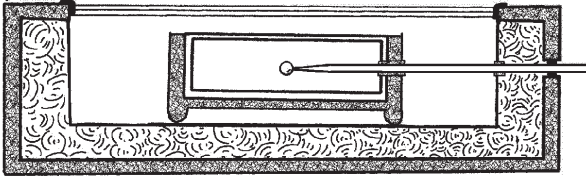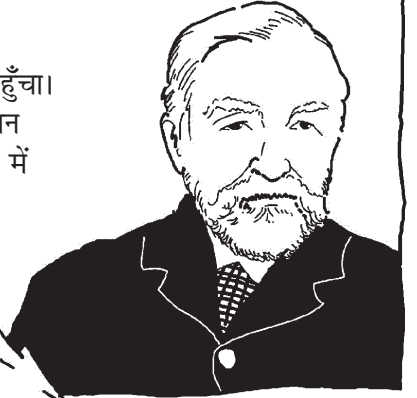
क्या सूर्य की ऊर्जा का सीधे उपयोग कर भाप बनाई जा सकती है?
तब शायद सौर-ऊर्जा से चलने वाला भाप का इंजन भी बनाना सम्भव हो।

पहली शताब्दी में अलेक्जेन्ड्रिया में हीरो ने एक दिलचस्प सौर-यंत्र बनाया। उसने काँच के दो पात्रों को एक नली से जोड़ा।

जब पानी से भरे निचले पात्र को धूप में रखा जाता तो उसके अन्दर की हवा फैलती और नली द्वारा पानी को ऊपरी पात्र में ढकेलती।
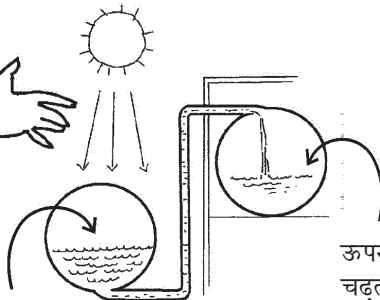
परन्तु असल में हीरो का यंत्र मात्र एक खिलौना था।

सौर-इंजन

इंग्लैन्ड के पास कोयले के भण्डार होने के कारण वहाँ सबसे पहले औद्योगीकरण हुआ। कोयले के अभाव में फ्राँस पिछड़ गया।

1860 में गणित के फ्रेंच प्रोफेसर – औगस्टीन मूशो ने अपनी सरकार को एक क्रौंतिकारी सुझाव दिया:

सूर्य की किरणें उपयोग करो।

1861 में मूशो ने गर्म-बक्सों पर प्रयोग किया। उन्हें और ज्यादा गर्म करने के लिए उन पर वक्र दर्पणों के जरिए बाहर से और धूप केन्द्रित की।
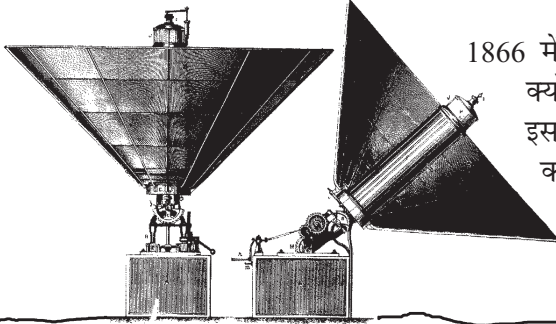
1866 में मूशो ने पहला सौर-इंजन बनाया। क्योंकि फ्राँस में धूप की कमी थी इसलिए मूशो ने अपने प्रयोग फ्रेंच कॉलोनी अल्जीरिया में जारी रखे।

मूशो ने एक ताँबे के बेलनाकार पात्र पर बाहर से कालिख पोती और धूप सोखने के लिए उसे काँच से ढँका।
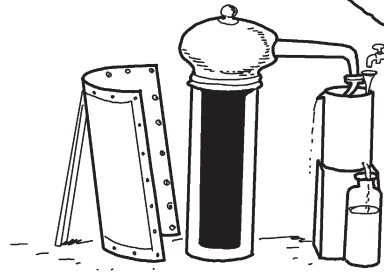
एक परवलीय दर्पण की मदद से उसने बाहर से काले पात्र पर और अधिक धूप केन्द्रित की। इस यंत्र से मूशो **वाइन** (शराब) बनाने में सफल रहा।
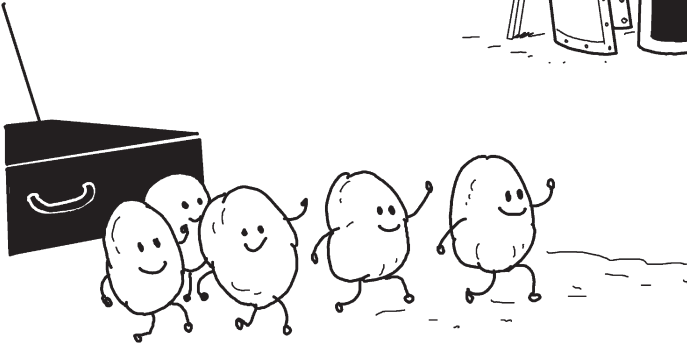
मूशो, 45-मिनट में आधा-किलो डबलरोटी और 1-घण्टे में एक-किलो आलू उबाल पाया।

सूर्य से मजेदार प्रयोग

गहरे रंग की सतहें अधिक ऊष्मा सोखती हैं। काली, सिलेटी और सफेद रंग के तीन कागजों को बाहर धूप में रखें। कुछ देर बाद हरेक को छुएं। कौन सा कागज सबसे गर्म हुआ?
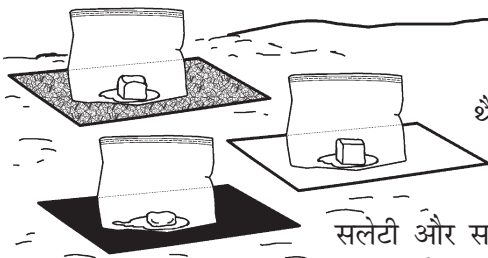
तीन जिप-लॉक प्लास्टिक की थैलियों में एक-एक बर्फ का घन रखें। थैलियों को बन्द कर उन्हें धूप में तीन अलग-अलग रंगों - काली, सलेटी और सफेद शीट्स पर रखें। कुछ मिनटों बाद पिघले पानी की मात्रा नापें। बर्फ का कौन सा घन पहले पिघला?

मूशो ने धूप को सीधे विद्युत में बदलने सम्बंधी प्रयोग भी किए। परन्तु 1880 में मूशो अपने विश्वविद्यालय वापस लौटे।

मूशो के बाद उनके सहायक ऐंबिल पिफ्रे ने सौर-ऊर्जा के शोध की कमान सम्भाली। उसने सौर-ऊर्जा से चलने वाले कई मोटर बनाए और सौर-ऊर्जा के प्रचार-प्रसार के लिए कई सार्वजनिक प्रदर्शनियाँ भी लगाईं।
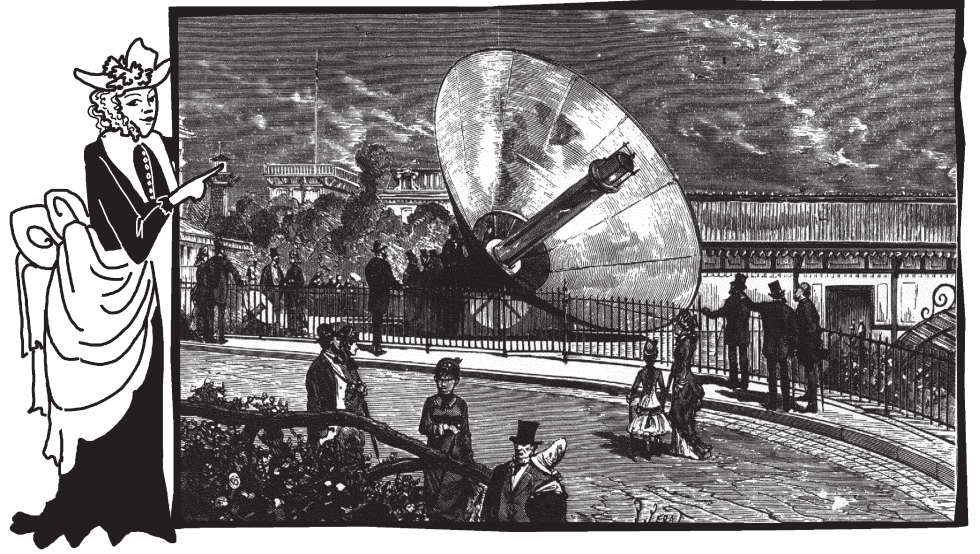
1880 में पेरिस के ग्रार्डन ऑफ टूलेरिस में उसने सौर-ऊर्जा से चलने वाले एक जेनरेटर की प्रदर्शनी लगाई। उससे उसने एक प्रिंन्टिग प्रेस चलाया और **सोलर-जरनल** की 500 प्रतियाँ छापीं।
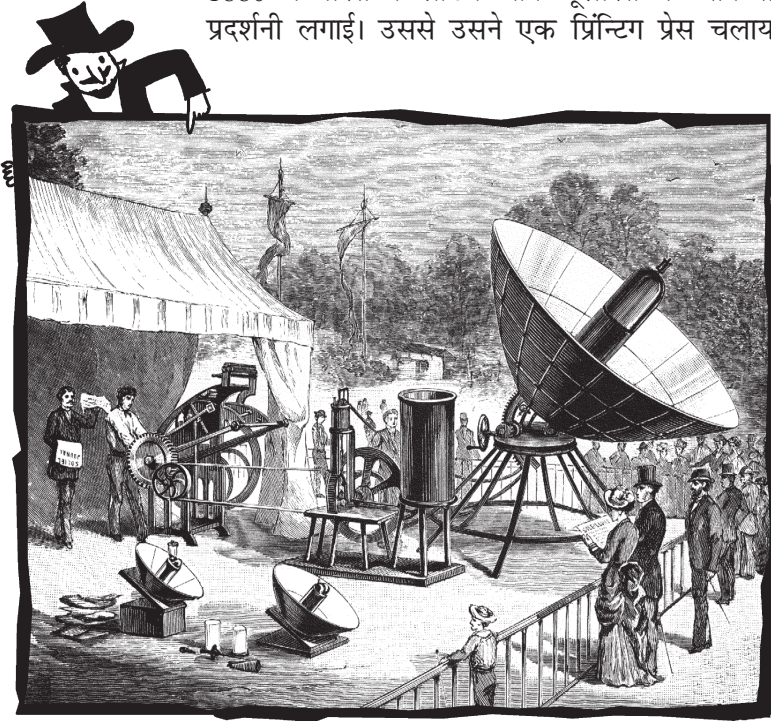
अल्जीरिया के पानी में मैग्नीशियम की मात्रा बहुत अधिक थी। मूशो का **सोलर-स्टिल** अल्जीरिया में पेयजल स्वच्छ करने के लिए बहुत लोकप्रिय हुआ।
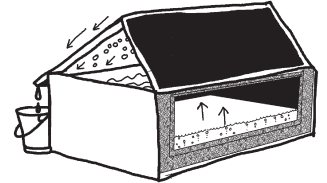
मूशो ने सौर-युग का सूत्रपात तो नहीं किया परन्तु उनके शोध ने सौर-ऊर्जा के अनुसंधान की नींव अवश्य रखी।

1876 में अमरीका में बसे एक स्वीडिश इंजीनियर - जॉन ऐरिकसन ने एक नई राह पकड़ी।

सूर्य से चलने वाले भाप इंजन की जगह उसने एक सूर्य चलित गर्म हवा का इंजन बनाया। उसने धातु के बने रिफ्लेक्टरों के स्थान पर साधारण काँच के बने दर्पण उपयोग किए..

.... क्योंकि इन दर्पणों की निचली रुपहली तह पानी आदि से सुरक्षित रहती थी। इसलिए वो जल्दी धुँधले नहीं पड़ते थे।
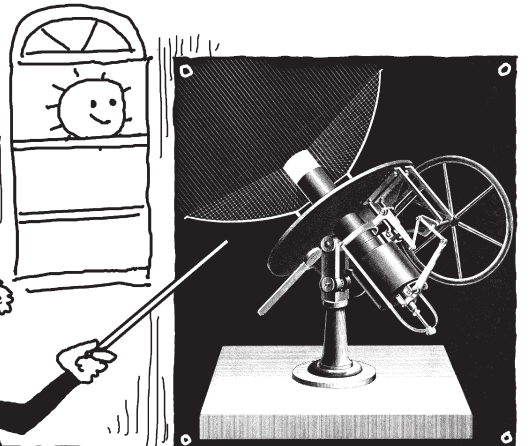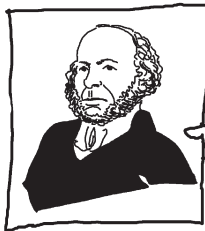
1899 में अमरीका में बसे एक ब्रिटिश आविष्कारक औब्री इनियास ने शंकू के आकार के रिफ्लेक्टर से एक सौर-मोटर बनाया। 1901 में इनियास ने अपने मित्र के शतुरमुर्ग फार्म पर इस सौर-मोटर की एक प्रदर्शनी लगाई जिसे बहुत प्रसिद्धी मिली। उसने इश्तहार में लिखा:
बिना किसी अतिरिक्त फीस के सौर-मोटर देखिए!
दुनिया का प्रथम और सर्वश्रेष्ठ आविष्कार -
सौर-ऊर्जा से चलने वाला 15-हार्स पावर का अनूठा इंजन!

मूशो, ऐरिकसन और इनियास के दर्पण बहुत जटिल और मँहगे थे। उनके कलपुर्जे अक्सर टूटते-फूटते रहते थे। और क्योंकि पूरा उपकरण बाहर खुले आसमान में लगा था इसलिए तेज हवा और मौसम का भी उन पर खराब असर होता था।

उस काल में दर्पणों को लगातार सूर्य की दिशा में उन्मुख करने का कोई यंत्र नहीं था। इसलिए हर समय दर्पणों का मुँह सूर्य की तरफ उन्मुख कर पाना बहुत मुश्किल था।

दर्पण को सूर्य की ओर उन्मुख करने के लिए उसे मीनार पर लगे एक जटिल यंत्र द्वारा ऊपर-नीचे किया जाता था।

लगभग उसी दौरान एक फ्रेंच इंजीनियर चार्लस टेलये - जो **रेफ्रेजिरेजशन के पितामह** कहलाते हैं ने मशीनों को चलाने के लिए एक कम तापमान का सोलर-कलेक्टर बनाया। वो पहले व्यक्ति थे जिन्होंने कम तापमान पर उबलने वाले तरल का प्रशीतन (रेफ्रेजिरेजशन) के लिए उपयोग किया।

विल्सी और बॉयल नाम के दो अमरीकी इंजीनियरों ने टेलये के विचारों को आगे बढ़ाया। उन्हें लगा कि दर्पणों के बिना भी वो इंजन चलाने में सफल होंगे . . .
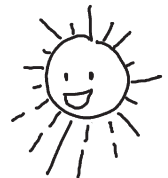
. . . . और सिर्फ एक गर्म-बक्सा, कम तापमान के इंजन को चला पाएगा। उनके काम से सौर-ऊर्जा के व्यवसायीकरण को जोरदार बढ़ावा मिला।

पहला व्यवहारिक सौर-इंजन

1906 में एक स्वशिक्षित अमरीकी इंजीनियर फ्रैंक शूमैन ने पहला व्यवहारिक सौर-इंजन बनाया। उसने **गर्म-बक्से** पर बाहरी दर्पणों से और अधिक धूप केन्द्रित करके ज्यादा बेहतर सोलर-इंजन बनाया। शूमैन ने सन पॉवर कम्पनी की स्थापना कर भविष्यवाणी की कि: **एक दिन पृथ्वी पर हरेक यांत्रिक काम के लिए कम-से-कम दस प्रतिशत सौर-ऊर्जा उपयोग होगी।**
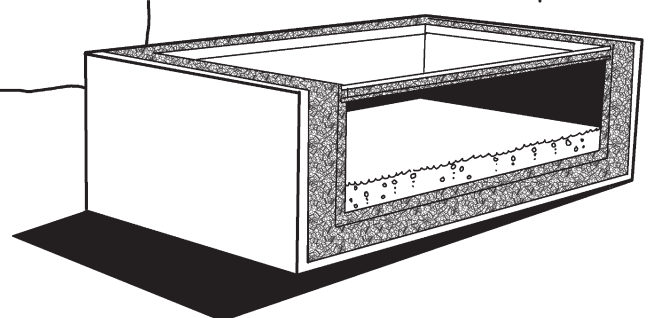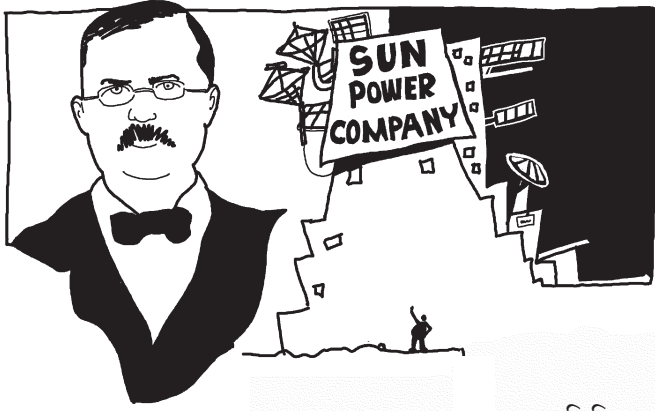
मिस्त्र उस समय इंग्लैन्ड के आधीन था। मिस्त्र में प्रचुर मात्रा में धूप उपलब्ध थी। इसलिए शूमैन को मिस्त्र में एक सौर-पम्प स्थापित करने के लिए आमंत्रित किया गया।

शूमैन का 14-हार्स पावर क्षमता वाला पम्प एक मिनट में 11,000 लीटर पानी को 10-मीटर की ऊँचाई तक उठाता था।

ब्रिटिश सरकार ने शूमैन के पम्प की समीक्षा के लिए प्रोफेसर सी. वी. बॉयस को नियुक्त किया। बॉयस ने पम्प की कुशलता बढ़ाने के लिए परवलीय आकार के दर्पणों के उपयोग का सुझाव दिया।
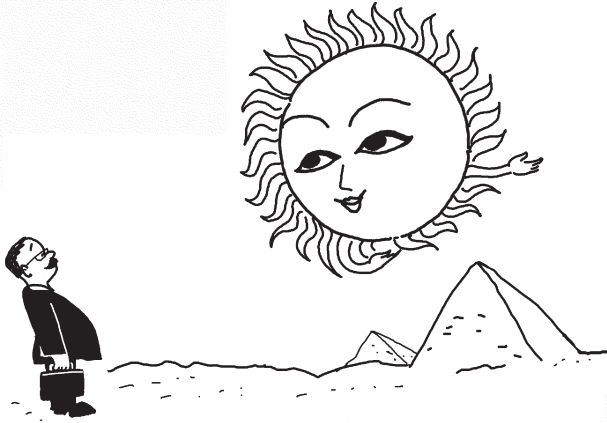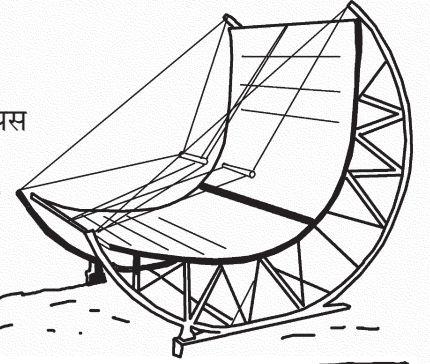
हमें हर समय उबलते पानी की जरूरत नहीं होती है। स्नान का काम मामूली गर्म पानी से चल जाता है। पुराने जमाने में लोग एक विशेष दिन लकड़ी काट कर पानी गर्म करके नहाते थे। इसे 'स्नान दिवस' कहते थे। लकड़ी काटना मुश्किल काम था इसलिए लोग हफ्ते में सिर्फ एक ही दिन नहाते थे।

पर अट्ठारवहीं शताब्दी में भौतिक सम्पन्नता और व्यक्तिगत स्वच्छता के कारणों से गर्म पानी की माँग बढ़ी।

पर जल्द ही एक बेहतर तरीका खोज निकाला गया।

धातु के पीपों और टंकियों को काला रंगकर, उनमें पानी भरा गया और उन्हें झुकी स्थिति में धूप में रखा गया। उनसे पानी गर्म हुआ। एक उपभोक्ता ने कहा, 'कभी-कभी तो पानी इतना गर्म हो जाता था कि नहाते समय मुझे उसमें ठण्डा पानी मिलाना पड़ता था।' पर कभी-कभी पानी गर्म होने में बहुत देर भी लगती थी। बारिश वाले दिन और रात के समय तो एकदम आफत होती।

सन पॉवर कम्पनी के स्टॉक सर्टिफिकेट

New Jersey

THE SUN POWER COMPANY

111

This Certifies that Frank Shuman is the registered holder of Four Shares of the Capital Stock of THE SUN POWER COMPANY

Transferable only on the Books of the Company by the holder hereof in person or by duly authorized Attorney upon surrender of this Certificate properly endorsed.

Witness the Seal of the Company and the signatures of its President and Treasurer this 20th day of Jany 1909

Constantine Shuman, Treasurer — Frank Shuman, President

1892 को बाल्टीमोर के आविष्कारक क्लेरेन्स केम्प ने पानी की काली टंकियों को धूप में रखने के साथ-साथ उनमें **गर्म-बक्से** का सिद्धांत भी जोड़ा। उसके **गर्म-बक्से** की ऊपरी सतह काँच की थी।
24 x 7 गर्म पानी
केम्प ने अमरीका में **क्लाईमेक्स** नाम का पहला व्यवसायिक सोलर वॉटर हीटर बनाया।
क्लाईमेक्स का नारा था: **टोटी घुमाओ, झट से गर्म पानी पाओ।** उसे चलाने में बिजली ईंधन का कोई खर्च नहीं था। 25 डालर के निवेश पर हरेक परिवार कोयले पर सालाना 9 डालर बचाता था। पानी गर्म करने वाला **क्लाईमेक्स** हाथों-हाथ बिका।
CLIMAX
1911 में फ्रैंक वॉल्कर ने सोलर वॉटर हीटर में एक और सुधार किया। उसने अपने सोलर वॉटर हीटर को परम्परागत ईंधन से गर्म करने वाली पद्धति से जोड़ दिया। इससे लोगों को हर मौसम में चौबीसों घण्टे गर्म पानी मिलने लगा।
इस बीच चार्ल्स हैस्कल ने पुराने **क्लाईमेक्स** में एक नया सुधार किया। उसने ऊँची और गहरी टंकियों के बदले फैली और छिछली आयताकार टंकियां लगाईं। दोनों में पानी की मात्रा समान रही। सूर्य की किरणें छिछली टंकियों में गहराई तक पानी को गर्म करती थीं। पानी गर्म करने के ऐसे सौर-यंत्र कैलिफोर्निया और फ्लोरिडा में सबसे लोकप्रिय हुए क्योंकि वहाँ प्रचुर मात्रा में धूप उपलब्ध थी।
100-लीटर
100-लीटर
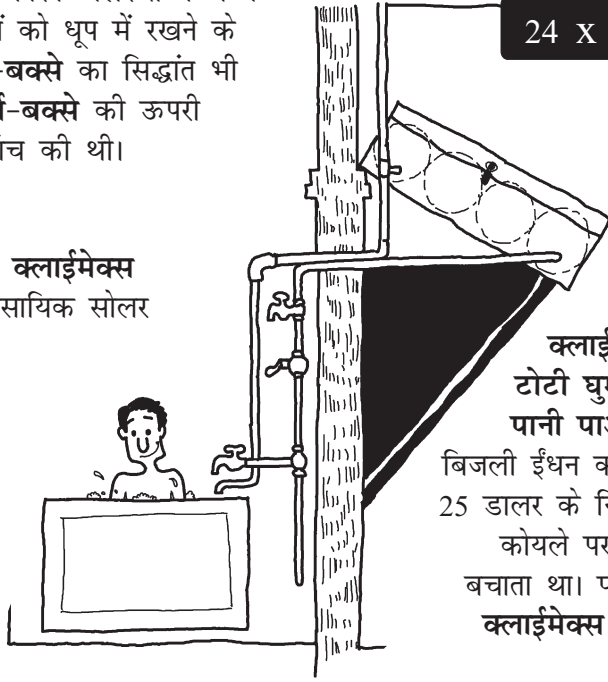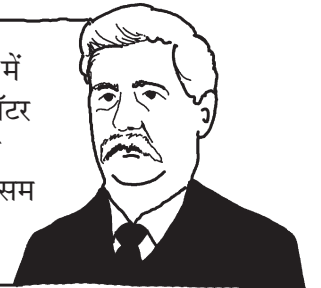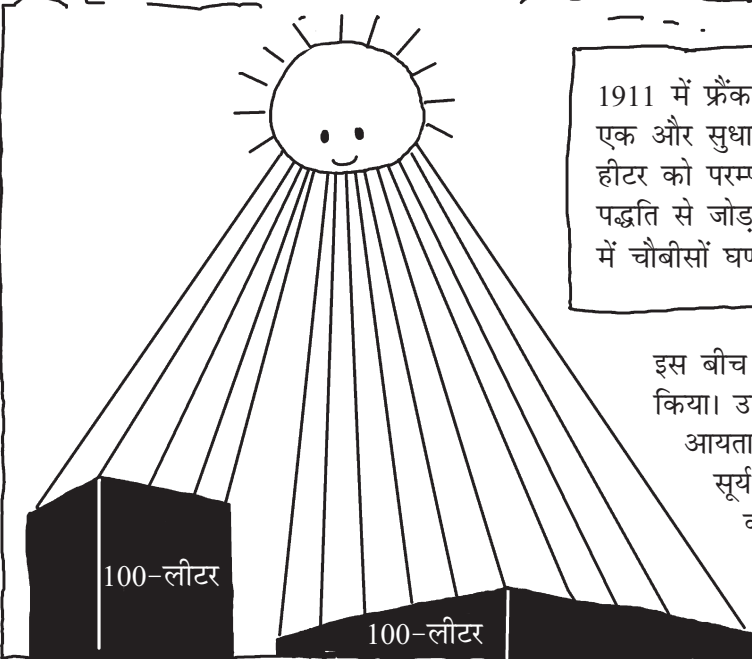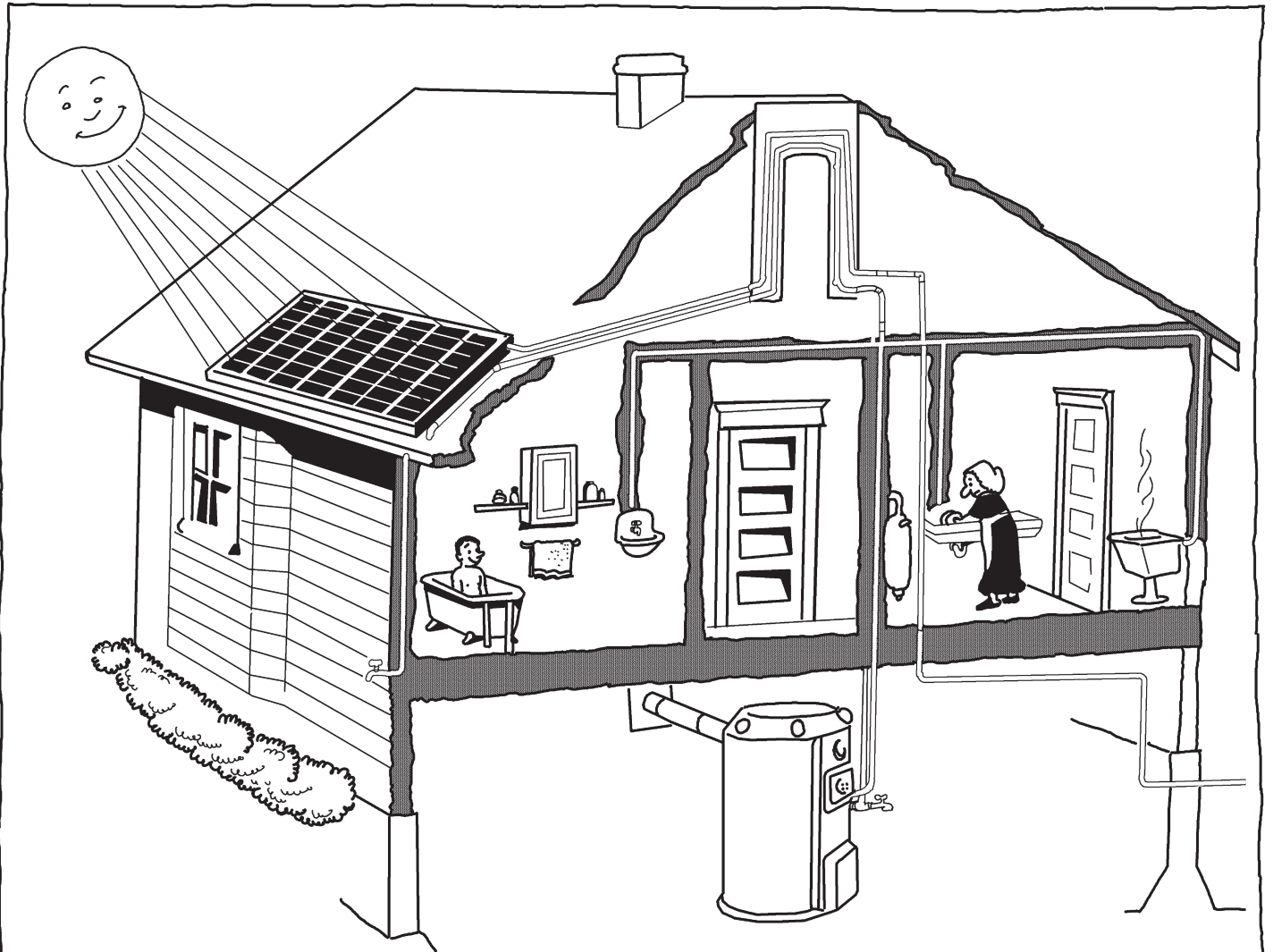
1909 में अमरीकी इंजीनियर विलियम जे. बेली ने रात-और-दिन गर्म पानी उपलब्ध कराने के लिए एक सोलर वॉटर हीटर बनाया जिससे सौर-ऊर्जा के क्षेत्र में क्राँतिकारी परिवर्तन आया। बेली ने सौर-ऊर्जा एकत्रित करने वाले यूनिट और गर्म पानी के भण्डार को अलग-अलग स्थानों पर रखा।
दिन में धूप के समय छत पर रखे **गर्म-बक्से** का पानी सीधे रसोईघर में रखी गर्म पानी की भण्डार टंकी में जाता था। रात से समय टंकी में पानी आना बन्द कर दिया जाता था।
क्योंकि गर्म पानी की टंकी अच्छी तरह से ऊष्मा-निरोधी बनाई गई थी इसलिए उसमें रखा पानी सुबह के स्नान के लिए एकदम गर्म रहता था।
बेली ने ऊष्मा सोखने वाले पॉइप्स की कुशल क्षमता बढ़ाने के लिए उनमें पंख (फिन्स) भी लगाए।
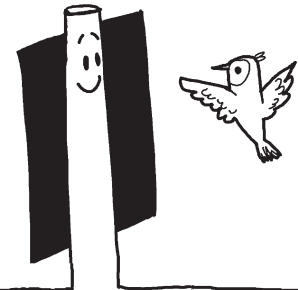
1913 में बेहद बर्फ पड़ने से एक बड़ी दुर्घटना हुई।
ऊष्मा सोखने वाले पॉइपों में पानी जम गया और ताँबे के पॉइप फट गए।
पॉइप एकदम मक्का के दानों जैसे फटे। उसके बाद पानी की जगह
ठण्ड-निरोधी एंटी-फ्रीज इस्तेमाल किया जाने लगा।
1920 का दशक सोलर वॉटर हीटर्स के लिए बेहद सफल समय था।
पर तभी प्राकृतिक गैस के अपार भण्डारों की खोज हुई।
ईंधन की दर में भारी गिरावट आई। गैस कम्पनियों ने उपभोक्ताओं को रिझाने और
ज्यादा गैस इस्तेमाल करने के लिए भारी छूट और रियायते दीं।
उससे सोलर वॉटर हीटर्स की बिक्री ठप्प हो गई।

1932 में चार्ल्स इवाल्ड ने ड्यूपले सोलर हीटर के लिए एक नया पॉइप डिजाइन सुझाया। उसने गर्म पानी की टंकी और उसके धातु के कवच के बीच कार्क का चूरा भर उन्हें ऊष्मा-निरोधी बनाया।
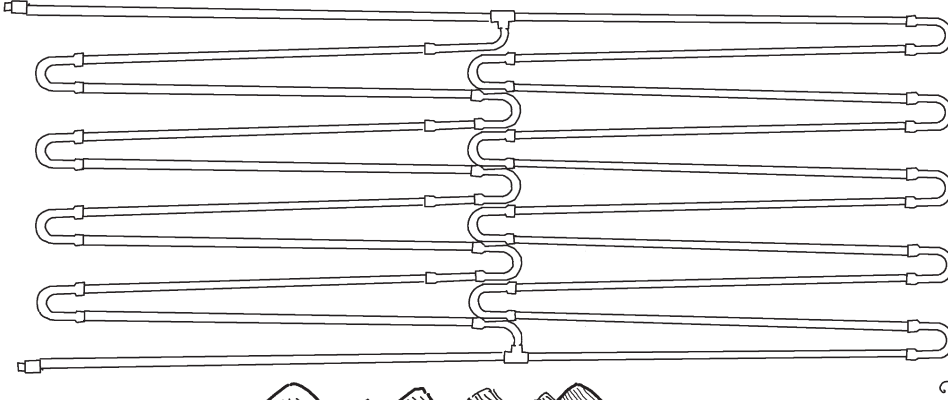
जल्द ही सोलर वॉटर हीटर्स उन देशों में फैले जहां ईंधन की कमी थी परन्तु धूप प्रचुर मात्रा में थी। 1935 में घर निर्माण के काम में उछाल आया जिससे सोलर वॉटर कम्पनी की आर्थिक हालत सुधरी। नए घरों में हजारों सोलर वॉटर हीटर्स लगाए गए।

सोलर वॉटर हीटर्स का क्यूबा में इस नारे के साथ स्वागत हुआ:
'बिना बिजली, बिना गैस, बिना कोयले,
बिना कोई कीमत चुकाए गर्म पानी पाएं!'

1940 में इजरायल में एक युवा माँ रीना यिसार को ईंधन की किल्लत का सामना करना पड़ा। ईंधन की कमी के कारण ज्यादातर लोगों ने ठण्डे पानी से नहाना शुरू कर दिया। परन्तु रीना ने अपने घुटने नहीं टेके। वैसे रीना को कोई खास तकनीकी ज्ञान नहीं था परन्तु उसकी सामान्य बुद्धि बहुत तेज थी। उसने एक पुरानी टंकी को काले रंग से पोता और उसमें पानी भर कर उसे बाहर धूप में रख दिया। कुछ घण्टे के बाद पानी अच्छा-खासा गर्म हो गया। उससे रीना ने अपने बच्चे को प्रेम से नहलाया।
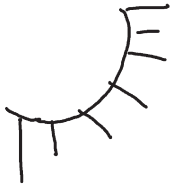
इससे प्रेरित होकर रीना के पति लेवी यिसार ने 1953 में सोलर वॉटर हीटर्स बनाने वाली नेर-याह कम्पनी, इजरायल में शुरू की।

उसके पहले ग्राहक इजरायल के सर्वप्रथम राष्ट्रपति डेविड बेन गुरियॉन थे। उन्होंने अपने घर में सोलर वॉटर हीटर लगवाया।
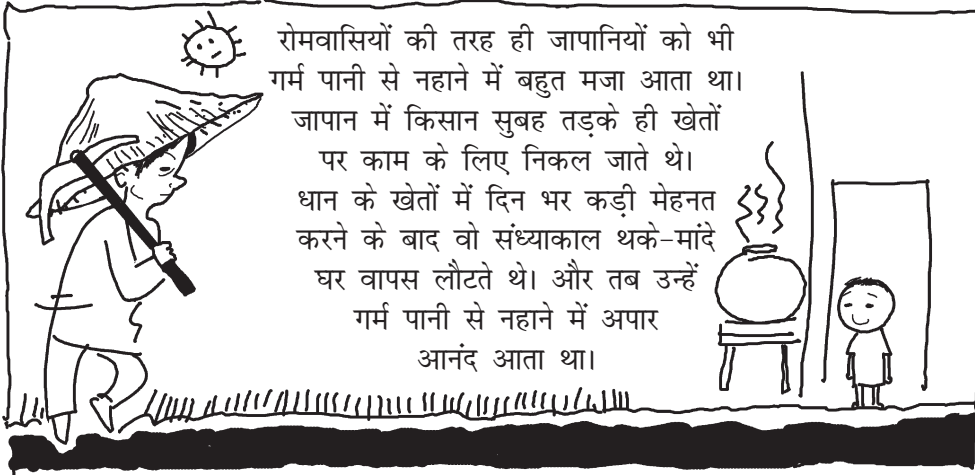
जापान में परम्परागत तरीके से लकड़ी जलाकर पानी गर्म करने में बहुत अधिक ईंधन खर्च होता था।

इसलिए आर्थिक मंदी के दौर में लोगों ने पानी गर्म करने के लिए सूर्य का उपयोग शुरू किया। 1940 में सुकेयू यामामोटो ने किसानों को एक अद्भुत जुगाड़ू सोलर वॉटर हीटर उपयोग करते देखा। वो एक पानी से भरी 2-मीटर लम्बी, 1-मीटर चौड़ी और 15-सेमी ऊँची आयताकार टंकी थी और उसका ऊपरी हिस्सा काँच से ढँका था। इससे प्रेरित होकर यामामोटो ने जापान का पहला व्यावसायिक सोलर वॉटर हीटर डिजाइन किया। सुबह पानी भरकर ढक्कन बन्द कर देने पर दोपहर तक उसमें स्नान का पानी अच्छी तरह गर्म हो जाता था।
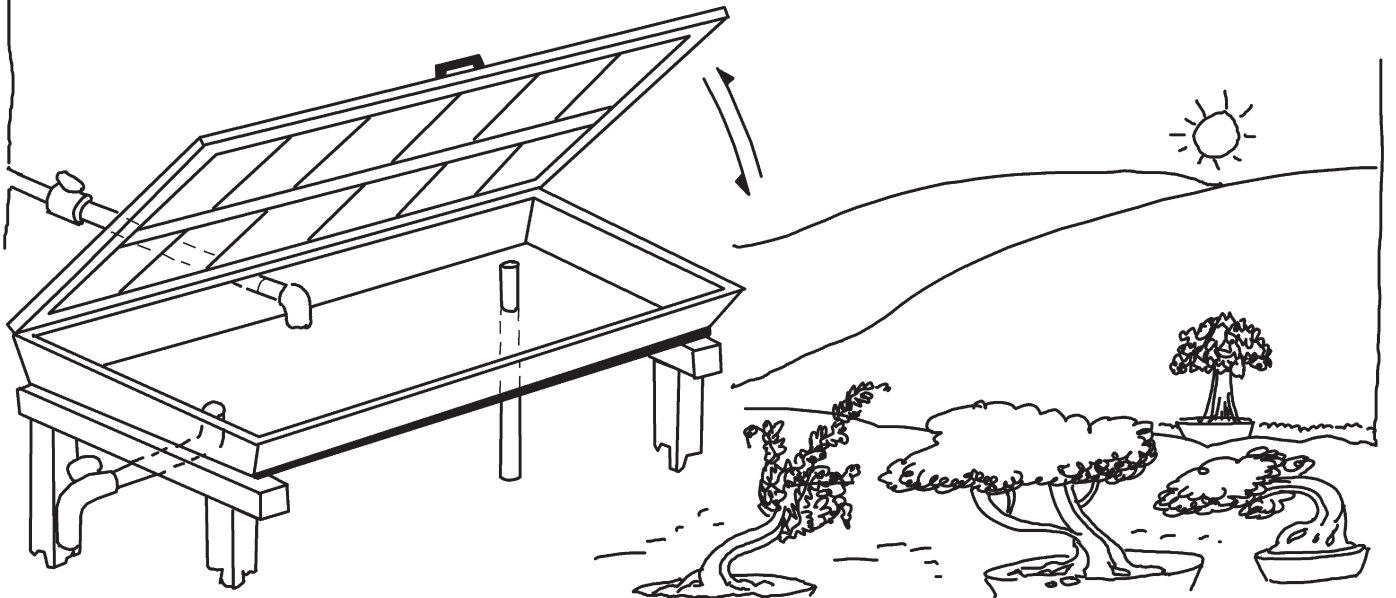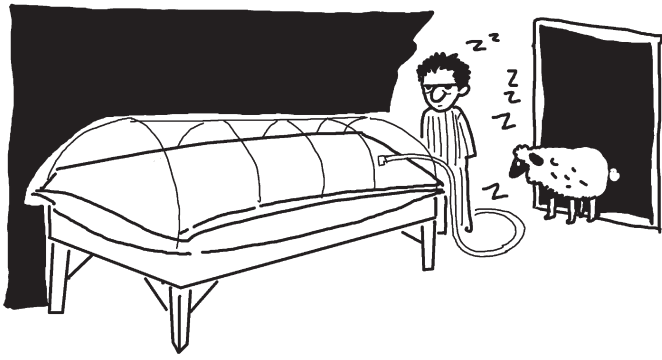
1950 में विनायल से बना, हवा के गद्दे जैसा सोलर वॉटर हीटर बहुत लोकप्रिय हुआ। तार के जाल और प्लास्टिक के कवच से ढँकने से उसकी कुशलता और बढ़ गई। यह सोलर वॉटर हीटर कीमत में सस्ता, इस्तेमाल में आसान और बरसों चलने वाला था।
पहली औद्योगिक क्राँति ब्रिटेन में आई। वहाँ का मजदूर वर्ग गंदी और तंग बस्तियों में रहने को मजबूर हुआ। इसका सजीव वर्णन चार्ल्स डिकेन्स ने अपने अनेकों उपन्यासों में किया है।
.... इन गंदी बस्तियों में न तो साफ हवा और न ही धूप आती थी।
खुले बदबूदार नालों और साफ पानी के अभाव में इन बस्तियों में खतरनाक बीमारियां पलती-पनपती थीं।
हैजा, क्षयरोग, टायफाइड (आंत्र ज्वर) जैसी बीमारियों का बोलबाला था। शायद धूप का अभाव इन बीमारियों के फैलने का प्रमुख कारण था।
'जहाँ सूर्य न घुसे वहाँ डाक्टर जाए' का नारा वहाँ के लिए उपयुक्त था।
फ्रेंच रसायनशास्त्री लुई पाश्चर ने बीमारी में जीवाणुओं के फैलने की व्याख्या की और ब्रिटिश चिकित्सक सर आर्थर डेवीज ने उसकी पुष्टि की।
Ultraviolet rays
पराबैंगनी किरणें जीवाणुओं को नष्ट करती हैं।
1900 तक कई देशों ने शहरी योजनाओं के लिए सामाजिक स्वास्थ्य कायदे-कानून भी बनाए।
प्रथम युद्ध के बाद से जर्मनी में एक नया आन्दोलन शुरू हुआ जिसमें सर्दियों में इमारतों को गर्म रखने के लिए काँच का विशेष उपयोग शुरू हुआ।

1930 में शिकागो विश्व प्रदर्शनी के लिए शिकागो स्थित वास्तुशिल्पी जार्ज केक ने **कल का घर** डिजाइन किया। बारह कोनों वाले इस घर की नब्बे प्रतिशत दीवारें काँच की बनी थीं। घर बिल्कुल एक **गर्म-बक्से** जैसा था।
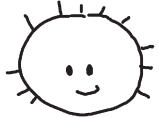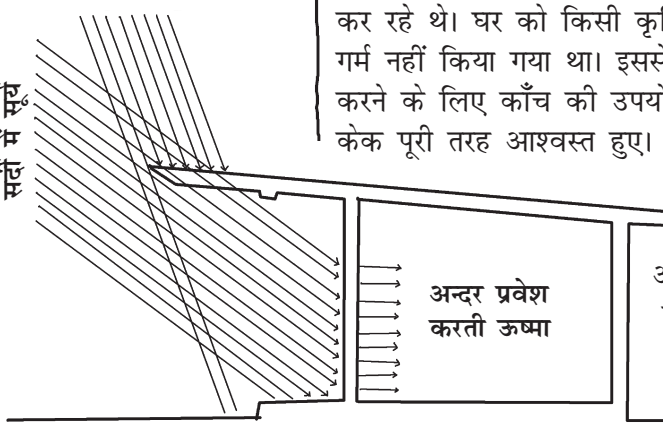
कड़क सर्दी वाले एक दिन जब बाहर धूप चमक रही थी तब केक ने पाया कि बाहर का तापमान शून्य के नीचे होने के बावजूद घर के अन्दर का तापमान काफी आरामदेय था। घर में मजदूर सिर्फ एक कमीज पहने मजे से अपना काम कर रहे थे। घर को किसी कृत्रिम विधि ने गर्म नहीं किया गया था। इससे घर गर्म करने के लिए काँच की उपयोगिता के बारे में केक पूरी तरह आश्वस्त हुए।

गर्मी के सूर्य से बचाव

सर्दी में सूर्य

अन्दर प्रवेश करती ऊष्मा
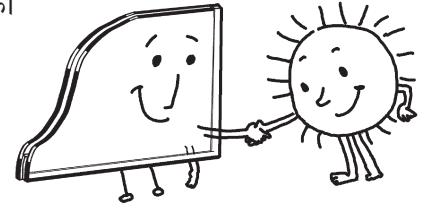
जल्द ही केक ने दो-तहों वाले काँच का उपयोग शुरू किया। इससे 50 प्रतिशत तक ऊष्मा की हानि बची।

अगर खिड़कियों के ऊपर छज्जे लगे हों तो गर्मी के मौसम में भी घर के अन्दर सड़ी गर्मी से बचा जा सकता था।

वास्तुशिल्पी आर्थर ब्राॅउन ने पाया कि काले रंग की दीवारों में बड़ी मात्रा में ऊष्मा संचित करने की क्षमता होती है। घर गर्म करने का उन्हें यह बहुत किफायती तरीका नजर आया।

परन्तु तभी द्वितीय महायुद्ध के बादल मंडराने लगे। सौर-ऊर्जा वाले घरों की कीमतें क्योंकि सामान्य घरों से 15 प्रतिशत ज्यादा थीं इसलिए बहुत कम लोग ही अब उन्हें खरीद रहे थे।

1938 में एम.आई.टी. के हयोट हौटल ने सौर-ऊर्जा से घर गर्म करने पर प्रयोग शुरू किए। यह प्रयोग अगले दो दशकों तक जारी रहे। उनका तरीका बेली के सोलर वॉटर हीटर से काफी मिलता-जुलता था। इसमें छत पर गर्म हुआ पानी नीचे एक भण्डार टंकी में इकट्ठा होता था। घर के कमरों की ठण्डी हवा को गर्म टंकी पर फेंका जाता था। बाद में इस गर्म हवा को कमरों में वापस भेजा जाता था।
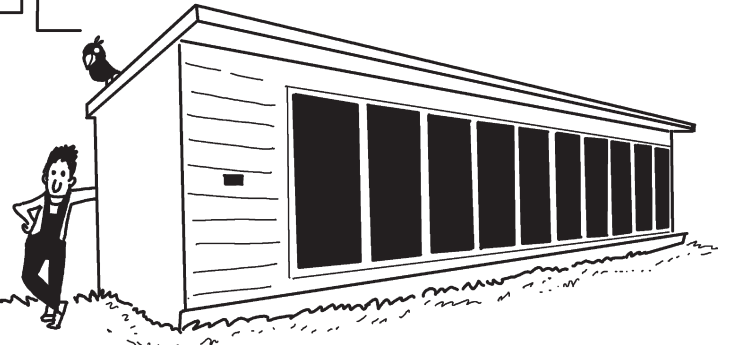
1947 में एम.आई.टी. में एक अनूठा प्रयोग हुआ। इसमें दक्षिण दिशा की ओर मुँह करती दोहरे काँच की दीवार के पीछे 18-लीटर क्षमता वाली पानी की टंकियों को एक-के-ऊपर-एक सटाकर रखा गया। धूप से जल्द ही इन टंकियों का पानी गर्म हुआ और इस ऊष्मा को पंखों द्वारा घर के अन्दर भेजा गया। घर को गर्म करने का यह तरीका छत पर **गर्म-बक्सा** रखने से भी आसान था।
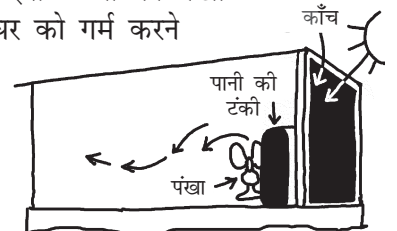
एम.आई.टी. की डा. मारिया टेलिस भी सौर घरों की एक अग्रणी शोधकर्ता थीं। उन्हें भारी मात्रा में पानी गर्म करने की बात व्यवहारिक नहीं लगी। वो एक ऐसे पदार्थ की तलाश में थीं जो पिघलते समय ढेर मात्रा में ऊष्मा सोखे और ठण्डा होने के दौरान उसे छोड़े।
खारा पानी
इसका एक उदाहरण था खारा-नमकीन पानी जो प्रचुर मात्रा में ऊष्मा सोख सकता था। **ग्लाबर-लवण** इसके लिए बहुत सटीक सिद्ध हुए। उन्होंने सौर-ऊर्जा से गर्म होने वाले पीबडी-हाउस का डिजाइन किया। परन्तु जल्द ही सारे पॉइपों में जंग लग गई और उनका सुझाया तरीका फेल हो गया।
1948 में चार्ल्स ब्रॉउन ने टस्कनी, एरीजोना में न्यूनतम ऊर्जा खर्च करने वाला **रोज स्कूल** डिजाइन किया।
स्कूल की छत काली एल्युमिनियम चादर की बनी थी। धूप से छत तपती और उसके नीचे की हवा गर्म हो जाती। इस गर्म हवा को पंखों द्वारा ठण्डे कमरों में भेजा जाता। यह बहुत कम-खर्चीला हल था।
द्वितीय महायुद्ध में ईंधन की कमी के कारण उसकी खपत पर भी पाबन्दी लगी। पर युद्ध के खत्म होने के बाद लोगों ने धड़ल्ले से ईंधन का उपयोग शुरू किया।
कम्पनियों ने भी तेल, गैस और बिजली की खपत बढ़ाने के लिए उनकी दरों में भारी कटौती की।
1960 में 100 यूनिट या उससे कम बिजली खर्च करने पर आपको 4-सेन्ट प्रति यूनिट के हिसाब से भुगतान करना पड़ता। पर 750 यूनिट से अधिक बिजली खर्च करने पर आप सिर्फ 2-सेन्ट प्रति यूनिट देते! तेल और गैस के दामों में भारी गिरावट के कारण अब सौर-ऊर्जा में किसी की रुचि नहीं रही थी।
खर्चा कम, अधिक उपयोग
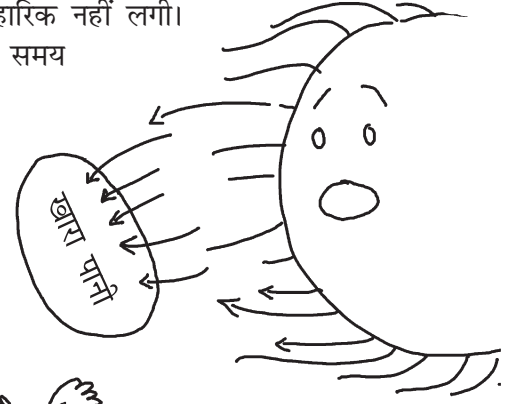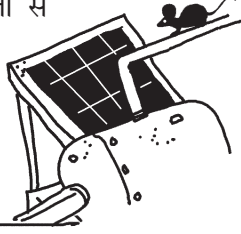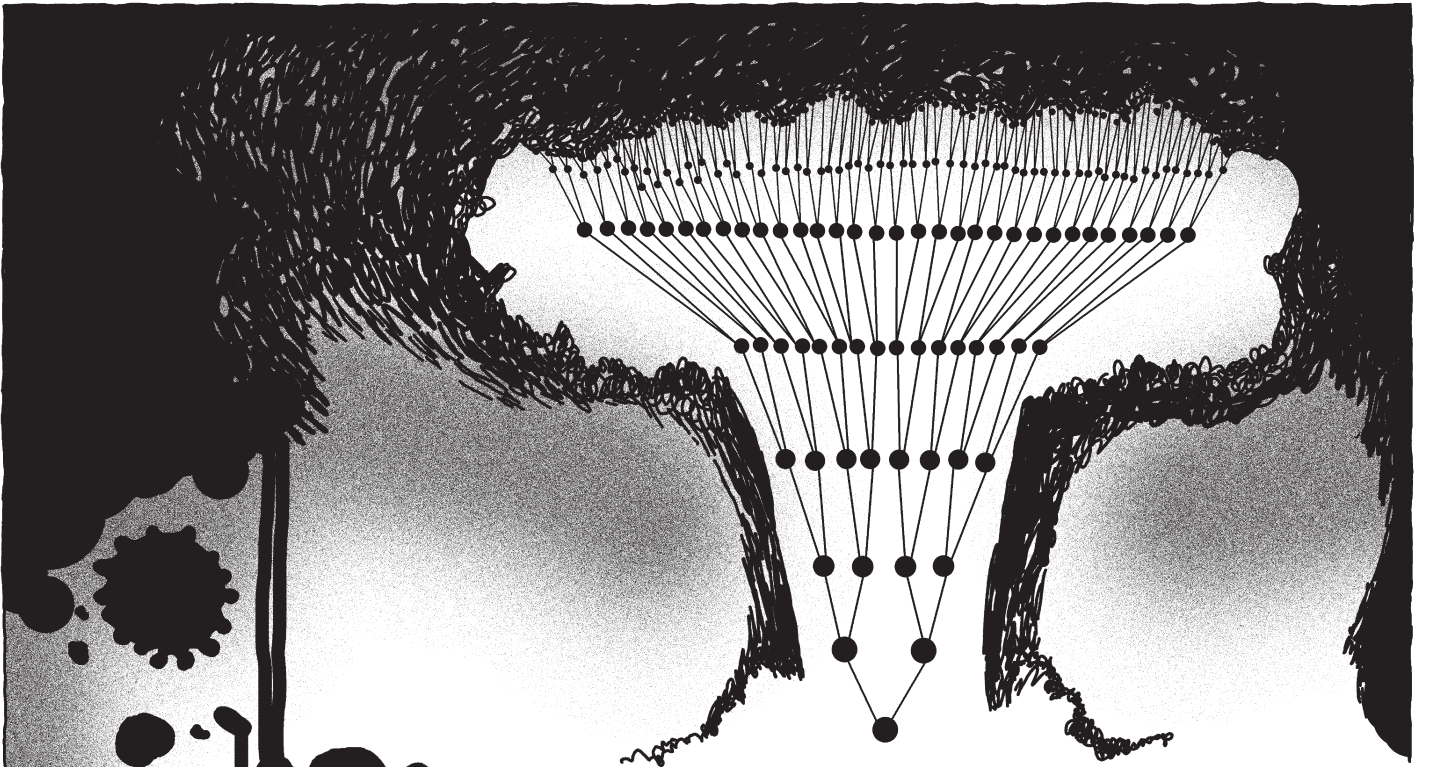
1896 में वैज्ञानिकों ने यूरेनियम और थोरियम जैसे रेडियोधर्मी अणुओं की खोज की। यूरेनियम का अणु न्यूट्रॉन से टकराने के बाद लगभग दो समान भागों में विभक्त होता है। इस प्रक्रिया में बहुत मात्रा में ऊर्जा पैदा होती है। इस प्रक्रिया को विखण्डन (फिशन) कहते हैं।
द्वितीय महायुद्ध के दौरान अमरीका ने दो जापानी शहरों - हिरोशिमा और नागासाकी पर ऍटम-बम्ब गिराए जिससे हजारों लोगों की मृत्यु हुई। बाद में अमरीकियों ने आणविक विखण्डन को नियंत्रित कर उससे बिजली का उत्पादन करना सीखा।
युद्ध के बाद बम्बों की कोई जरूरत नहीं रही। इसलिए राष्ट्रपति ऑइजनहॉवर ने आणविक तंत्रज्ञान को
'शान्ति के लिए अणु'
के नकाब में पेश किया। अमरीका में सभी राजनैतिक पार्टियों ने अणु-शक्ति को स्वच्छ, सुरक्षित और भविष्य की ऊर्जा करार देकर उसको एड़ी-चोटी का समर्थन दिया। अणु शक्ति की पैरवी करने वालों ने कहा:
आणविक ऊर्जा इतनी सस्ती होगी कि उसकी को मापने की कोई जरूरत ही नहीं पड़ेगी।
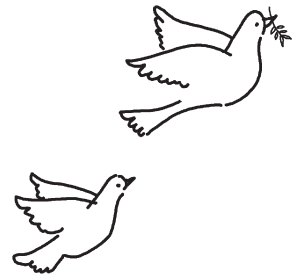
आणविक ऊर्जा का निर्माण युद्ध के संदर्भ में हुआ था इसलिए बहुत से लोग आज भी उसे असुरक्षित मानते हैं। यूरेनियम को खदानों से निकालने से लेकर रेडियोधर्मी कचरे से निबटने तक पूरी प्रक्रिया में विकीरण का खतरा बना रहता है। आणविक सम्राटों के अनेकों आश्वसनों के बावजूद विश्व में कई भीषण आणविक दुर्घटनाएँ - थ्री-माइल आयलैन्ड (1979), चेरनोबिल (1985) और फूकूशिमा (2011) घटी हैं। इन तीनों दुर्घटनाओं में बड़ी मात्रा में रेडियोधर्मी प्रदूषण फैला जो वहां के पर्यावरण और लोगों की सेहत के लिए बेहद घातक सिद्ध हुआ। इस प्रदूषण को साफ करने में बरसों लगेंगे।

पिछले 40 सालों में अमरीका में एक भी नया आणविक विद्युत संयंत्र नहीं लगा है। फूकूशिमा हादसे के बाद से जर्मनी ने अपने सभी आणविक संयंत्रों को धीरे-धीरे बन्द करने का निर्णय लिया है।

1998 में भारत के पोखरण आणविक परीक्षण की पूरे देश में भूरि-भूरि प्रशंसा हुई। सभी राजनैतिक दलों ने संसद में इसका तहेदिल स्वागत किया। भारतीय वैज्ञानिक भी इसमें कहीं पीछे नहीं रहे - उन्होंने सेना की वर्दी में अपने फोटो खिंचवाए।

अनियन्त्रित विखण्डन
(ऍटम-बम्ब)

नियन्त्रित विखण्डन
(आणविक ऊर्जा)

सोलर-सेल

सूर्य की धूप से पानी को गर्म कर हम ईंधन खपत में जरूर थोड़ी कमी ला सकते हैं। पर अगर हम धूप को सीधे विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर सकें तो यह बड़ी अहम बात होगी।

1889 में फ्रेंच वैज्ञानिक ऍडमन्ड बेकक्यूरिल ने प्रकाश को सीधे विद्युत में बदलने वाला फोटो-वोल्टेइक प्रभाव खोजा।

अणु की नाभि (न्यूक्लियस) के बाहर ऋण आवेश वाले इलेक्ट्रॉन घूमते हैं। जब कुछ इलेक्ट्रॉन मुक्त होकर बहते लगते हैं तभी विद्युत आवेश बहने लगता है।

धूप की ऊर्जा से कई अणुओं के इलेक्ट्रान्स बन्धनमुक्त होकर बाहर निकलते हैं। ऐसे अणु प्रकाश पड़ने से विद्युत पैदा कर सकते हैं।

1873 में रसायनशास्त्री डब्लू. स्मिथ ने जब सिलीनियम धातु (जो ताँबे के अयस्क में पाया जाता है) पर प्रकाश चमकाया तो उसमें विद्युत संचार होने लगा। उसमें धारा प्रवाह (करन्ट) की मात्रा बहुत कम थी परन्तु फिर भी तुरन्त उसका एक उपयोग खोज निकाला गया।

उसके लगभग 50 वर्ष बाद एक अमरीकी आविष्कारक चार्ल्स फ्रिट्ज ने सबसे पहले सोलर-सेल डिजाइन किया।
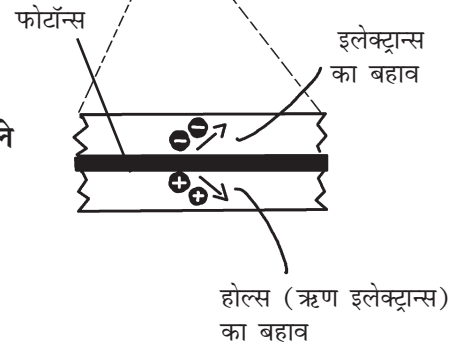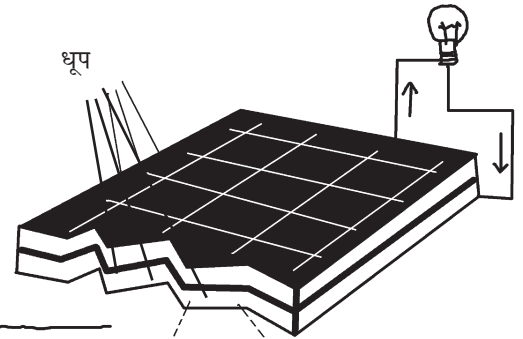
सिलीनियम की बनी पतली चकत्तियों पर सोने की पारदर्शी फिल्म चढ़ाई गई। जब इस सेल पर धूप डाली गई तब उससे सूर्य की 1 प्रतिशत ऊर्जा विद्युत में बदली।

सिलीनियम **विद्युत-आंख** के निर्माण में काम आया। प्रकाश टकराते ही उसमें एक क्षीण करन्ट बहता – जिससे एक **रिले** स्विच ऑन होता और उससे बड़ी मात्रा में करन्ट बहकर एक दरवाजा बन्द होता।

बाद में इसी तकनीक पर आधारित फोटोमीटर – प्रकाश की मात्रा को मापने के यंत्र बने।

1954 में बेल लैब के वैज्ञानिकों ने आकस्मिक खोज की जिससे सोलर सेल तकनीक में क्रौंतिकारी परिवर्तन आया। उन्होंने जब सिलीकॉन पर प्रकाश डाला तो उसमें भी विद्युत करन्ट बहने लगा। सिलीकॉन ने 5 प्रतिशत सूर्य की ऊर्जा को विद्युत में परिवर्तित किया। यह सिलीनियम से कहीं बेहतर था जो केवल 1 प्रतिशत सूर्य-ऊर्जा को ही विद्युत में परिवर्तित करता था।
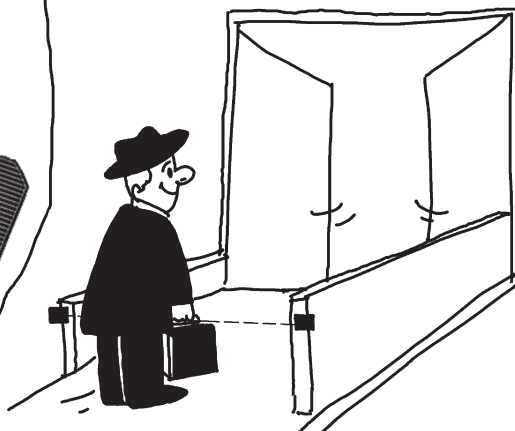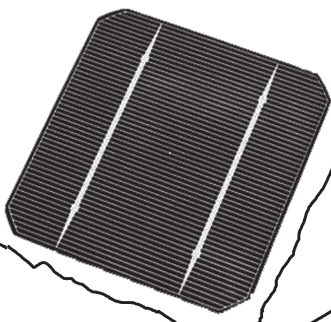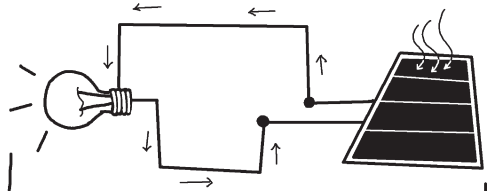
1948 में सेमीकन्डक्टर्स की खोज हुई। उन्हें शुद्ध पदार्थ में चन्द अशुद्धियाँ मिलकर बनाया गया। सेमीकन्डक्टर्स ने **ट्रांजिस्टर** युग का सूत्रपात किया।

सिलीकॉन हमारे आसपास की रेत और पत्थरों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। परन्तु सिलीकॉन और ऑक्सीजन का बँधन (बाँड) तोड़ना बहुत मुश्किल होता है। सिलीकॉन को पहले अच्छी तरह शुद्ध करना पड़ता है और फिर उसको पतली चकत्तियों में काट कर उसमें सुनिश्चित मात्रा में अशुद्धियाँ मिलानी पड़ती हैं। इस वजह से उसकी कीमत बहुत ज्यादा होती है।
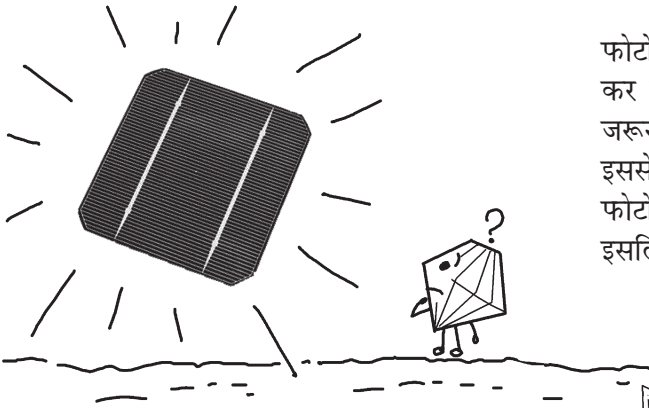
फोटो-वोल्टेइक प्रणाली में माडयूलर इकाईयाँ होती हैं जिन्हें जोड़-जोड़ कर पूरे संयंत्र को जल्दी स्थापित किया जा सकता है। जहाँ बिजली की जरूरत हो, उन्हें उसी स्थान पर लगाया किया जा सकता है। इससे बिजली की लम्बी तार की लाईनें खीचने की जरूरत नहीं पड़ेगी। फोटो-वोल्टेइक प्रणाली में घूमने-फिरने वाले पुर्जे नहीं होते हैं। इसलिए उनके परिचलन और रख-रखाव का खर्च बहुत कम होता है।

अंतरिक्ष रेस में सोलर की जीत

जैसे ही सोलर-सेल्स चर्चा का विषय बने वैसे ही अंतरिक्ष यानों की रेस शुरू हुई। अंतरिक्ष में भारी बैटरियाँ ले जाना मुमकिन न था। क्योंकि अंतरिक्ष में चौबीसों घंटे सूर्य चमकता है इसलिए सोलर-सेल्स अंतरिक्ष में बिजली पैदा करने का सबसे अच्छा तरीका निकले। 1957 से लेकर अब तक सभी अमरीकी उपग्रह - वैनगार्ड से लेकर स्काईलैब को सोलर-सेल्स ने विद्युत प्रदान की है। सोलर-सेल्स ने अंतरिक्ष में अपनी प्रतिभा सिद्ध की। अंतरिक्ष में सोलर-सेल्स की मँहगी कीमत आड़े नहीं आई।

कैमरा
दूरबीन
सोलर-पैनल्स
सोलर-पैनल्स
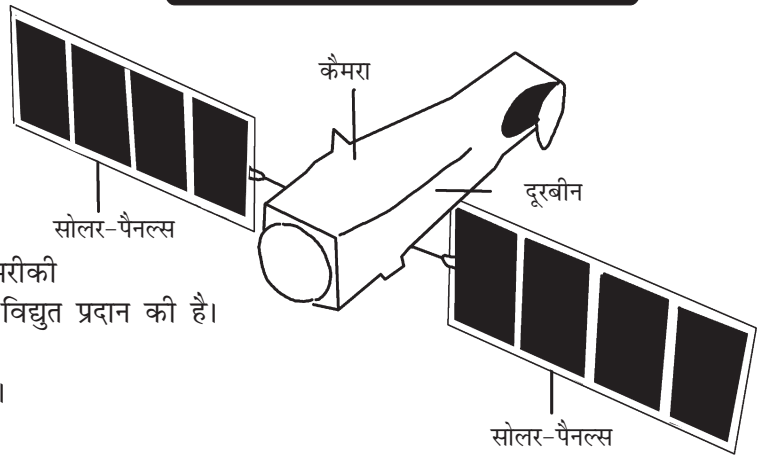
परन्तु पृथ्वी पर हालात बिल्कुल अलग थे। वहां सोलर-सेल्स मुकाबले में जीत नहीं पाए। तेल कम्पनियों के दबाव में सरकार ने सस्ते सोलर-सेल्स में कोई रुचि नहीं दिखाई। कोयले से उत्पन्न विद्युत सस्ती तो थी परन्तु उससे बहुत प्रदूषण होता था। कार्बन डॉईऑक्साइड और ग्लोबल वार्मिन्ग तब गर्म मुद्दे नहीं थे। सौर-ऊर्जा को बढ़ावा देने वाला और आणविक-ऊर्जा को चुनौती देने वाला कोई समर्थक वर्ग भी नहीं था।

सौर-ऊर्जा के लाभ
भारत में औसतन 300 दिन धूप पड़ती है और अपने यहाँ सौर-ऊर्जा के दोहन की अपार सम्भावनाएं हैं।
चंद हाथों में सत्ता बनाम लोगों का सशक्तीकरण
अगर हरेक भारतीय गांव की झोपड़ी के ऊपर एक सोलर-पैनल होगा तो लोग वाकई में सशक्त होंगे। और तब गांधीजी का विक्रेन्द्रीकृत गांवों का सपना साकार होगा।
भारत में 30 प्रतिशत विद्युत, प्रसारण के दौरान गुम या चोरी होती है। विकेन्द्रित सौर-ऊर्जा इस हानि को रोकेगी।
सौर-ऊर्जा स्वच्छ और टिकाऊ ऊर्जा का एक शाश्वत स्रोत है। उसके उपयोग से पर्यावरण संरक्षण में मदद मिलेगी। गैस, तेल और कोयले की तरह सौर-ऊर्जा ग्रीनहाउस-गैसें, वैश्विक गर्मी, अम्ल-वर्षा और कोहरा नहीं पैदा करती है।
सुधरी और उन्नत तकनीकों द्वारा सौर-ऊर्जा का लगभग 20 प्रतिशत भाग सीधे-सीधे विद्युत में परिवर्तित किया जा सकता है।
गांवों में महिलाओं को जलाऊ लकड़ी बीनने के लिए अक्सर मीलों चलना पड़ता है। चूल्हे पर खाना पकाते समय महिलाएं जहरीले धुएँ की साँस लेने को मजबूर होती हैं जिससे उन्हें श्वास सम्बंधी अनेकों बीमारियां होती हैं। सौर-चूल्हे पर पका खाना अधिक पौष्टिक होता है। क्योंकि सौर-चूल्हे पर खाना धीरे-धीरे और कम तापमान पर पकता है इसलिए उसमें भोजन के प्राकृतिक तत्व बरकरार रहते हैं।
आप सौर-चूल्हे पर खाना पकने के लिए चढ़ाकर आराम से चैन कर सकते हैं।
आपको भोजन को बार-बार हिलाना, चलाना नहीं पड़ेगा।
सौर-चूल्हे पर भोजन का जलना लगभग असम्भव होता है।
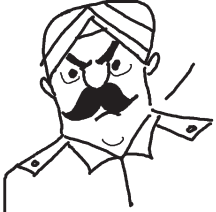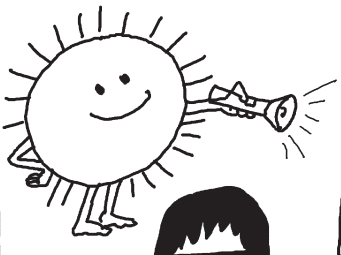
कोयला खनन जमीन में गड्ढे और खाईयाँ छोड़ता है। तेल के कुँओं में आग लग सकती है। जल-विद्युत प्रकल्पों के बाँधों से बड़ी मात्रा में लोग विस्थापित होते हैं। आणविक-ऊर्जा - खनन से लेकर रेडियोधर्मी कचरे से निबटने तक, खतरे से भरी होती है। सौर और पवन ऊर्जा इनमें सबसे अधिक सुरक्षित हैं।

एक संतुलित और टिकाऊ जीवनशैली जीने में सौर-ऊर्जा हमारी सहायता कर सकती है। उसके द्वारा हम भविष्य में आपदाओं, मौसम बदलाव, अशान्ति और अभाव का बेहतर सामना कर पाएंगे।

गैस के सिलेण्डर के लिए मुझे तीन हफ्ते इंतजार करना पड़ता है। मिट्टी का तेल ब्लैक-मारकेट में खरीदना पड़ता है। सौर-चूल्हे पर मैं मुफ्त में खाना पका सकता हूं।

सोलर तकनीकें अपनाने से लोकल लोगों को नौकरी मिलेगी और उनकी संपन्नता भी बढ़गी। सौर ऊर्जा से स्थानीय अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलेगा।

सोलर-पैनल में कोई घूमने-फिरने वाले पुर्जे नहीं होते इसलिए उनका रख-रखाव आसान होता है और वो बरसों चलते हैं। वर्तमान में सोलर-पैनल परम्परागत विद्युत पैदा करने वाली प्रणालियों से शायद मँहगे लगें पर जब बड़े पैमाने पर उनका निर्माण होगा तो यह स्वच्छ ऊर्जा का स्रोत अवश्य विजयी होगा।

सौर-ऊर्जा निर्माण में कोई ईंधन - कोयला, तेल या गैस नहीं लगता। इसलिए ईंधन को इधर-से-उधर ढोना नहीं पड़ता है। सौर-ऊर्जा में अणु-ऊर्जा जैसा विनाशकारी रेडियोधर्मी कचरा भी नहीं निकलता है।

सौर-ऊर्जा संयंत्रों को विद्युत उत्पादन प्रकल्पों से दूर निर्जन इलाकों में आसानी से लगाया जा सकता है। लेह, लद्दाख में आज हजारों घरों में सोलर-पैनल्स द्वारा बिजली पहुँची है। परम्परागत बिजली के खम्बे और तार खींचने की अपेक्षा सोलर-पैनल लगाना कहीं आसान और बेहतर हैं।

विशेषज्ञों का मानना है कि वर्ष 2040 तक विश्व की आधी ऊर्जा पुनर्जीवी स्रोतों से आएगी।

सौर-ऊर्जा से हानिकारक कार्बन डॉईऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, सल्फर-डॉईऑक्साइड और पारा नहीं निकलता और उनसे पर्यावरण प्रदूषण नहीं होता है।

बिजली निर्माण की कई परम्परागत प्रणालियां बहुत प्रदूषण फैलाती हैं।

आज दुनिया में 200 करोड़ लोग बिजली के बिना, अंधेरे में जीने को मजबूर हैं।

सौर-ऊर्जा के साथ-साथ कम ऊर्जा से ज्यादा प्रकाश देने वाले एल.ई.डी. बल्बों का उपयोग करके हम दुनिया के सबसे गरीब लोगों के जीवन में प्रकाश की एक किरण ला सकते हैं।

सौर-ऊर्जा के उपयोग द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से अच्छे स्वास्थ्य की कीमत कम होती है।

सोलर वॉटर हीटर्स और सोलर-पैनल्स लगाने से बिजली का बिल कम होगा। बिजली कटौती के दौरान भी आप उसका उपयोग कर पाएंगे।

दुनिया में सारे कोयले, गैस और पेट्रोल का असली स्रोत क्या है? सूर्य ही इन सभी ईंधनों का प्रमुख स्रोत है। इन सभी का उद्गम पौधों अथवा जीवों से हुआ जिन्हें करोड़ों वर्ष पूर्व अपनी सारी ऊर्जा सूर्य से ही मिली थी।

सौर-ऊर्जा का उपयोग लोगों को वाकई में सशक्त करेगा। उसके उपयोग से लोगों की विदेशों और केन्द्रीय संस्थाओं पर ऊर्जा निर्भरता कम होगी। इससे समुदाय संगठित होंगे और वे प्राकृतिक आपदाओं और अंतरराष्ट्रीय बहिष्कार का बेहतर सामना कर सकेंगे।

एक घण्टे में पृथ्वी पर पड़ने वाली धूप की मात्रा सब लोगों के साल भर के बिजली खर्च से कहीं ज्यादा होती है।

सूर्य की किरणें 3 लाख किलोमीटर प्रति सेकण्ड की गति से 15-करोड़ किलोमीटर की दूरी तय कर पृथ्वी पर 8 मिनट में पहुँचती हैं।

कुछ विशेष भारतीय व्यंजन – चपाती आदि को सौर-चूल्हे में पकाना मुश्किल होगा।
सौर-ऊर्जा के नुकसान
सूर्य की धूप को उपयोगी मात्रा में एकत्रित करने के लिए सोलर-पैनल्स को एक बड़े क्षेत्रफल में फैलाना होगा। जमीन सीमित होने के कारण इसमें अड़चने आएंगी।
सौर-चूल्हे पर खाना पकाने में बहुत समय लगता है। दाल-चावल को सौर-चूल्हे में रखने से पहले बहुत समय तक पानी में भिगो कर रखना पड़ता है।
बादल वाले दिन शायद सौर-चूल्हे में खाना पके ही नहीं। रात में तो उस पर खाना पकाना असम्भव होगा।
सौर-चूल्हे के समुचित उपयोग के लिए उसे समय-समय पर सूर्य की दिशा में उन्मुख करना होगा जिससे कि उसके दर्पण अधिक-से-अधिक धूप इकट्ठी कर सकें।
परम्परागत भोजन के तरीकों को जल्दी खत्म करना नामुमकिन है।
धीरे-धीरे लोग एक प्रकार के भोजन के अभ्यस्त हो जाते हैं। भोजन की पुरानी आदतों को बदलना बहुत मुश्किल होता है।
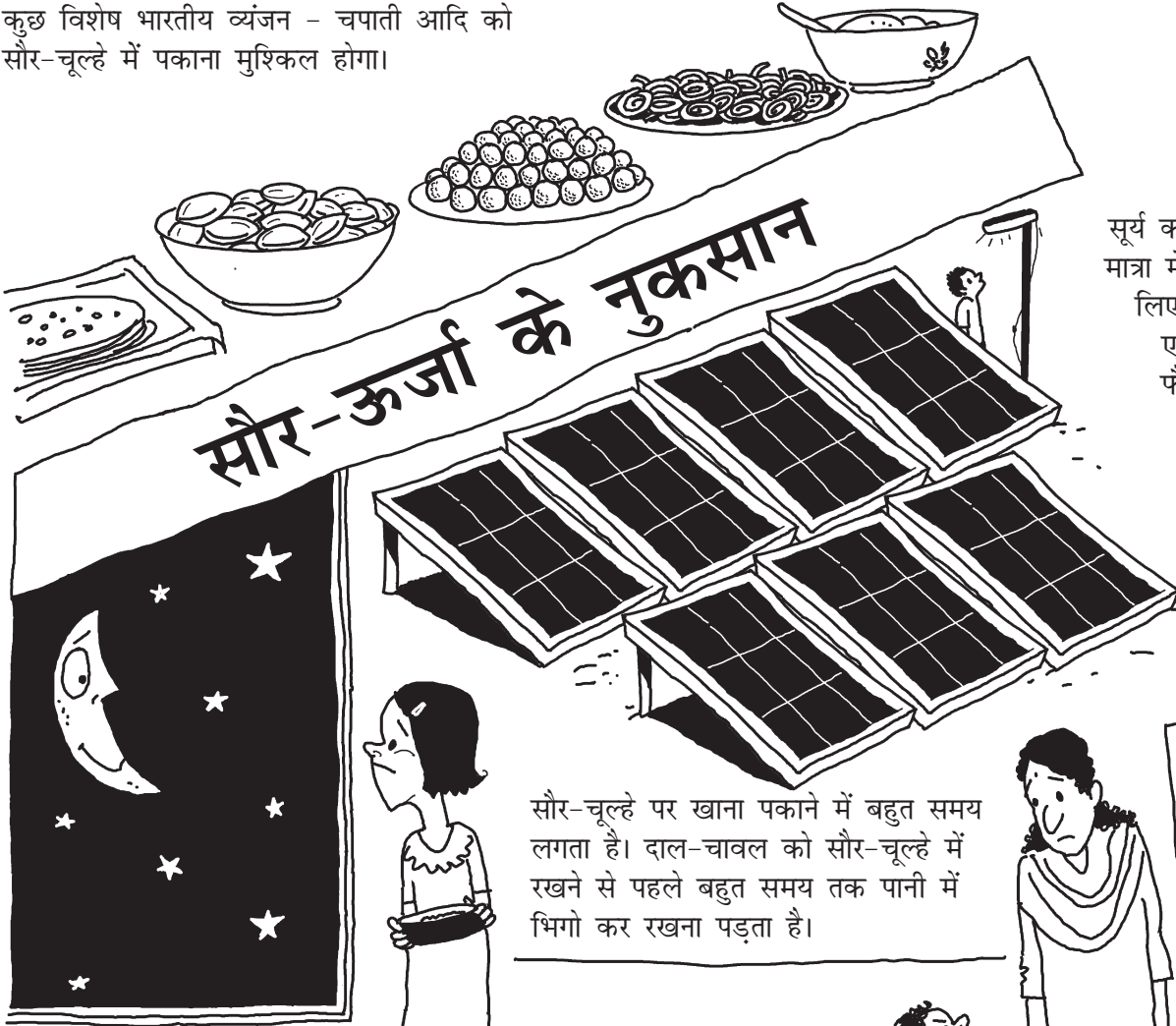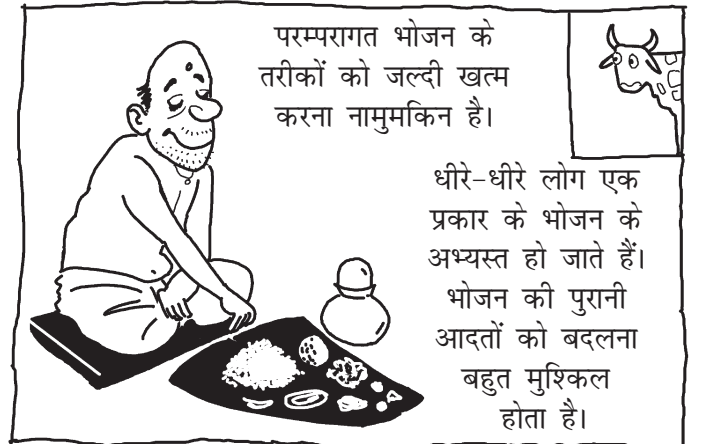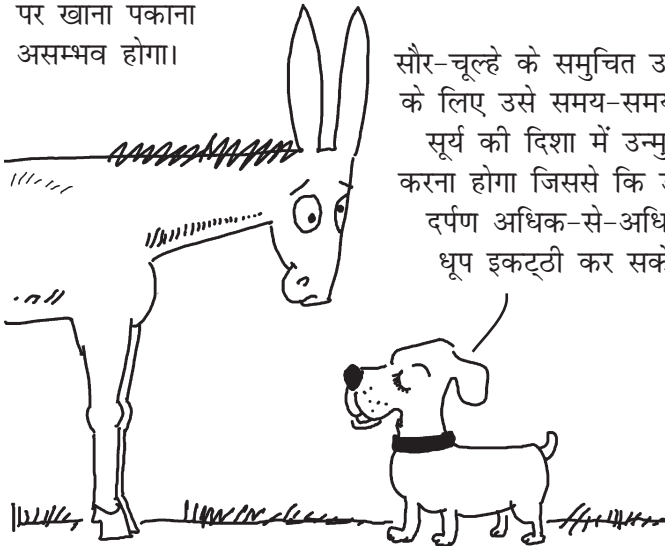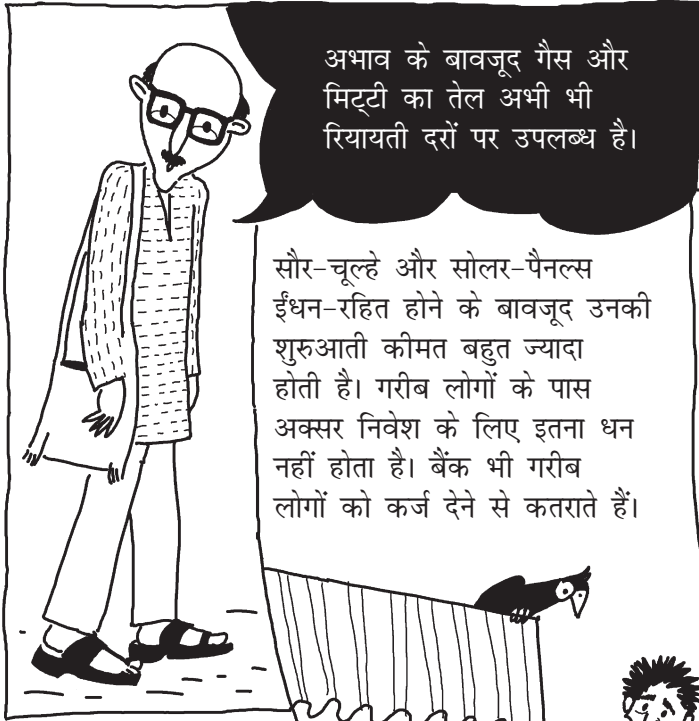
अभाव के बावजूद गैस और मिट्टी का तेल अभी भी रियायती दरों पर उपलब्ध है।
सौर-चूल्हे और सोलर-पैनल्स ईंधन-रहित होने के बावजूद उनकी शुरुआती कीमत बहुत ज्यादा होती है। गरीब लोगों के पास अक्सर निवेश के लिए इतना धन नहीं होता है। बैंक भी गरीब लोगों को कर्ज देने से कतराते हैं।
जब तक लोगों को आसपास जलाऊ लकड़ी, उपले आदि मिलते रहेंगे तब तक उनकी किसी नई तकनीक में रुचि नहीं होगी।
साधारण लोगों की नई तकनीकों में कोई विशेष रुचि नहीं होती। वो सौर-चूल्हे पर खाना पकाने के बिल्कुल भी अभ्यस्त नहीं होते हैं।
ऊर्जा उपयोग सम्बन्धी तथ्य
● 1990 में एक सौर-चलित विमान ने बिना किसी ईंधन के अमरीका में 4060 किलोमीटर की यात्रा तय कर एक विश्व रिकार्ड बनाया।
● बिजली की अंगीठियों में सबसे अधिक ऊर्जा खर्च होती है। उसके बाद में माईक्रोवेव और ऍअरकन्डीशनर्स की बारी आती है।
● विश्व आबादी के मात्र 5 प्रतिशत होने के बावजूद अमरीकी दुनिया की 30 प्रतिशत ऊर्जा खर्च करते हैं।
Miss America
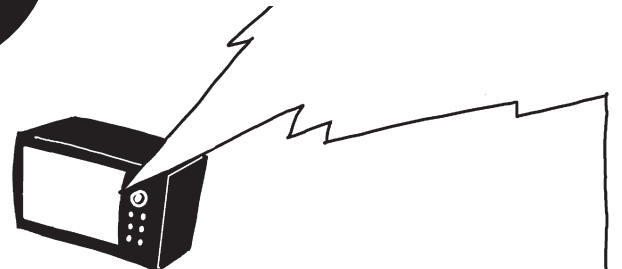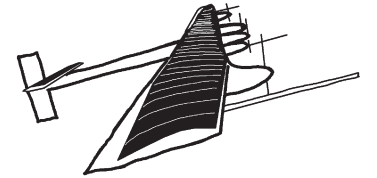
सौर-ऊर्जा का वैश्विक अनुभव

सौर-चूल्हे एक लम्बे अर्से से मौजूद हैं। उसके बावजूद उन्हें आम लोगों ने नहीं अपनाया है। सौर-चूल्हे अभी तक क्यों नहीं लोकप्रिय हुए हैं?

शरणार्थी कालोनी में लोगों की सहायता के लिए एक अंतरराष्ट्रीय विकास संस्था ने 500 सौर-चूल्हे बाँटें। छह महीने बाद वहाँ सर्वेक्षण के दौरान एक चौंका देने वाली बात सामने आई - 90 प्रतिशत सौर-चूल्हों को नष्ट कर उन्हें लोगों ने लकड़ी जैसे जला दिया था!

यही प्रश्न अन्य समुचित तकनीकों जैसे - निर्धूम-चूल्हों, छोटी पवनचक्कियों और बिजली उत्पन्न करने वाले छोटे बाँधों के बारे में भी पूछे जा सकते हैं। इस प्रश्न का ईमानदारी से विश्लेषण करना जरूरी है।

इन अनुभवों के आधार पर सरकारें ढिंढोरा पीटती हैं: **'सौर-चूल्हे फेल हैं, उन्हें रियायतें नहीं दी जानी चाहिए।'**

पर अनेक सफल अनुभव भी हैं। यूनान में बहुत धूप पड़ती है। 1980 में वहां की सरकार ने गर्म पानी के विद्युत-गीजरों पर भारी टैक्स लगाया और साथ-साथ रियायती दरों पर अच्छी क्वालिटी के सोलर वॉटर हीटर उपलब्ध कराए। साथ में सौर-उर्जा के बढ़ावे के लिए उन्होंने एक जनशिक्षा अभियान भी चलाया। जल्द ही यूनान में सोलर वॉटर हीटर बहुत लोकप्रिय हुए।
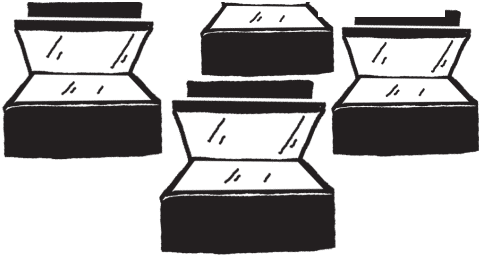
यूनानियों की सफलता का मंत्र था:

टैक्स में छूट + अच्छी क्वालिटी + शिक्षा + वाजिब कीमत + सरल स्कीम

अभी तक हमने सौर-ऊर्जा की सम्भावनों की सिर्फ सतह ही छुई है। सौर-ऊर्जा के सचमुच में प्रभावी होने के लिए सौर-तकनीकों को लोगों की स्थानीय संस्कृति के अनुरूप ढालना होगा। ऊर्जा के इस विशाल संसाधन की अपार सम्भावनाएं हैं - इससे दुनिया में गरीबी समाप्त करने में, स्वास्थ्य बेहतर करने में और जंगलों का नाश बन्द करने में मदद मिलेगी। सौर-ऊर्जा के उपयोग से दुनिया के सबसे गरीब लोगों का जीवनस्तर सुधरेगा।

1950 में जब होमी भाभा भारत में अणु संयंत्र लगा रहे थे तब दामोदर धर्मानन्द कोसाम्बी जैसे समझदार चिन्तकों ने अणु-ऊर्जा बारे में शंकाएं व्यक्त की थीं। कोसाम्बी ने अणु संयंत्रों की जगह सौर-ऊर्जा के दोहन का सुझाव दिया था।

अलग-अलग प्रकार के सौर-चूल्हे

बक्से वाले सौर-चूल्हे सबसे ज्यादा प्रचलन में हैं। भारत में कई लाख लोग उनका उपयोग करते हैं। वे सस्ते, मजबूत और इस्तेमाल करने में आसान होते हैं। चावल, दाल, सब्जी जैसे भारतीय भोजन उसमें आसानी से पकाए जा सकता हैं।
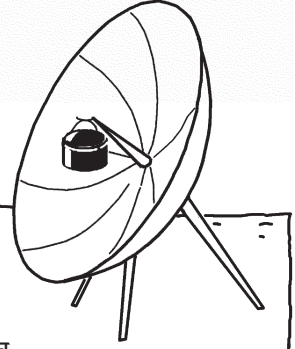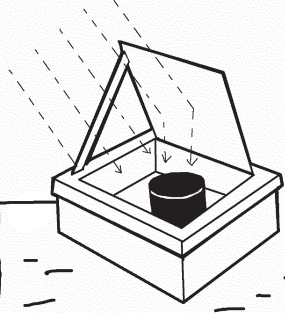
वक्र आकार के सौर-चूल्हे परवलीय डिश एन्टेना जैसे होते हैं। इनमें सूर्य का प्रकाश एक बड़ी डिश द्वारा एकत्रित कर उसे फोकस पर लटके काले बर्तन पर केन्द्रित किया जाता है। इन सौर-चूल्हों में उच्च तापमान पर बहुत जल्दी भोजन पकता है। यह सौर-चूल्हे आकार में बड़े और मँहगे होते हैं और इसलिए यह बड़ी संस्थाओं के लिए उपयुक्त होते हैं।

यह सरल **कुकइट** सौर-चूल्हा गत्ते पर चिपकी चमकदार पन्नी से बना है। इसे आसानी से मोड़कर कहीं भी रखा जा सकता है।
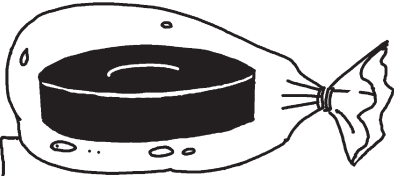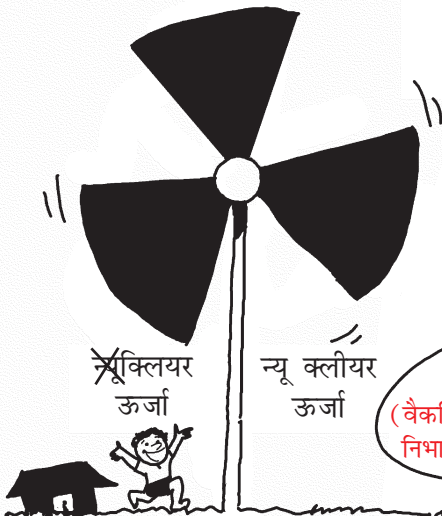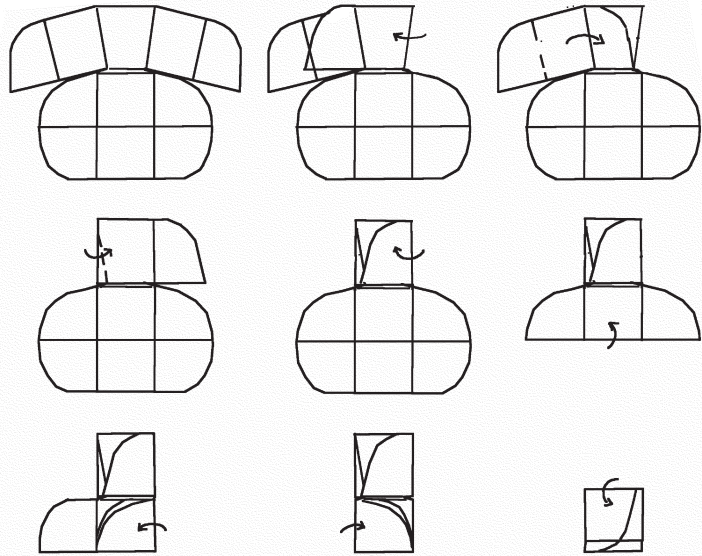
क्योंकि **कुकइट** सौर-चूल्हा सस्ता है इसलिए इसका बहुत व्यापक इस्तेमाल हुआ है। सामान्य सौर-चूल्हों की तरह इसमें काँच न इस्तेमाल कर काले बर्तन को एक प्लास्टिक की थैली में रखकर उसका मुँह बन्द किया जाता है। बर्तन के चारों ओर फँसी हवा धूप को अन्दर आने देती है पर ऊष्मा को कैद करती है। सौर-चूल्हे के ऊपर काँच या फिर ऊष्मा निरोधी पारदर्शी प्लास्टिक की झिल्ली लगाई जा सकती है।

सौर-चूल्हे में खाना पकने में कितना समय लगता है?
जल्दी भोजन पकाने के लिए अधिक धूप केन्द्रित करो। काँच पर लम्बवत पड़ती धूप, तिरछी किरणों से बेहतर होगी।
गलत
सही
बक्से वाले सौर-चूल्हे को समय-समय पर घुमाकर सूर्य की ओर उन्मुख करना पड़ता है। बर्तनों पर अधिकतम धूप पड़ने के लिए सौर-चूल्हे के दर्पणों को समय-समय पर घुमाना पड़ता है। भोजन सबसे तेज तब पकेगा जब सौर-चूल्हे की परछाँई ठीक उसके पीछे होगी।
इसका उत्तर सौर-चूल्हे के डिजाइन के साथ-साथ निम्न घटकों पर निर्भर करेगा जैसे - साल का समय, सूर्य की धूप, बर्तन की बनावट, भोजन की मात्रा और उसका प्रकार आदि।
गलत कोण
सही कोण
गलत कोण
तेज खाना पकेगा
धीमे खाना पकेगा
खाना नहीं पकेगा
एक या अधिक चमकीली सतहों द्वारा काले बर्तन के ऊपर ज्यादा प्रकाश डालें। इससे भोजन जल्दी पकेगा।
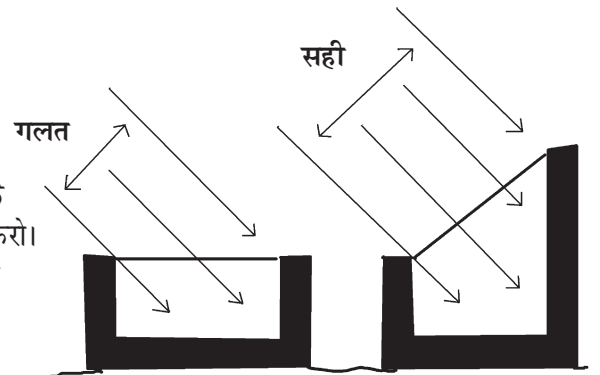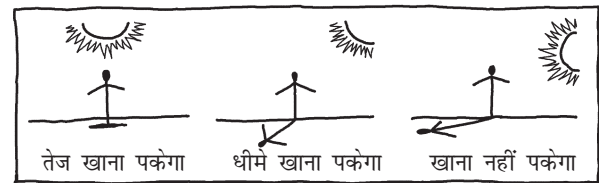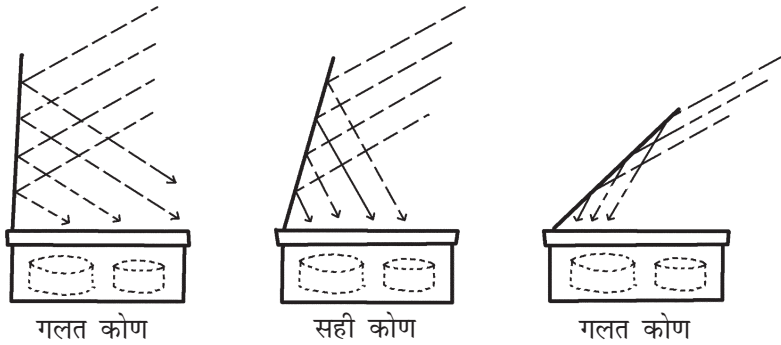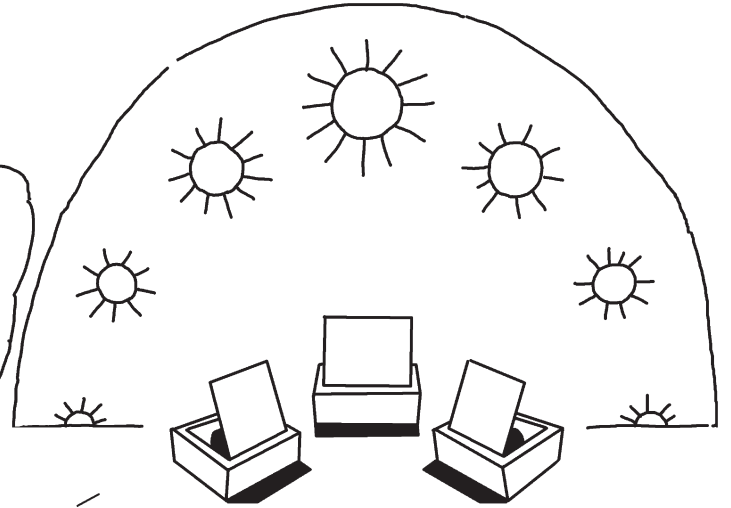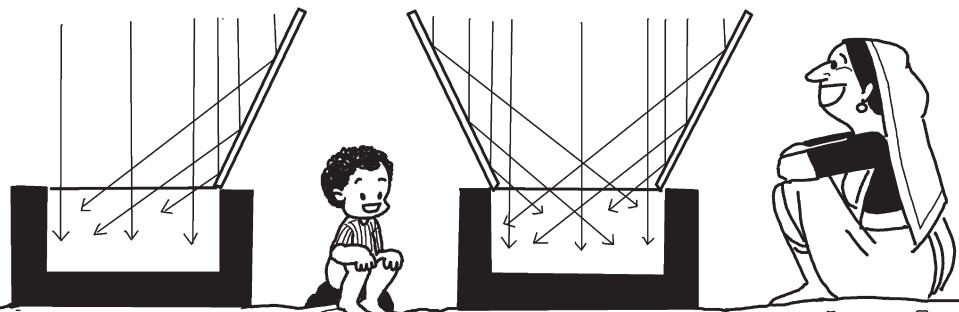
कार ट्यूब का सौर-चूल्हा

इस सौर-चूल्हे का डिजाइन सुरेश वैद्यराजन ने किया है। वो पेशे से वास्तुशिल्पी हैं पर सौर-घरों के निर्माण में उनकी विशेष रुचि है। इसको बनाने के लिए कार के पुराने ट्यूब और एक समतल काँच की जरूरत होगी। ट्यूब में अगर पँचर हो तो उसे जोड़ें।
फिर उसमें हवा भरकर उसे लकड़ी के काले बोर्ड पर रखें।
एल्युमिनियम के काले बर्तन में चावल और सही मात्रा में पानी डालें।
इस बर्तन को ट्यूब के गड्ढे में रखकर उसे काँच से ढकें।
काँच से ट्यूब सीलबन्द हो जाएगा। हवा न बाहर जा पाएगी और न ही अन्दर आएगी। कार का ट्यूब एक अच्छे ऊष्मा-निरोधी बक्से का काम करेगा। सूर्य की किरणें काँच में घुसकर अन्दर फँस जाएंगी। धीरे-धीरे अन्दर का तापमान बढ़ेगा और चावल अच्छी तरह से पकेगा।

सोडिस

एक स्वीडिश समूह ने दुनिया के गरीब लोगों के लिए पीने के पानी को साफ करने की एक सस्ती जुगाड़ निकाली है जिसका नाम **सोडिस** है।

कांच

कार ट्यूब

लकड़ी का काला बोर्ड

काला बर्तन

एक प्लास्टिक की बोतल में तीन-चौथाई पानी भरें। फिर ढक्कन लगाकर जोर से हिलाएं। पानी में घुली हवा कीटाणुओं के हनन में सहायक होगी। फिर बोतल को छत पर धूप में रखें। कुछ घण्टों में सूर्य की पराबैंगनी किरणें पानी में कीटाणुओं को खत्म कर देंगी। फिर वो स्वच्छ पेयजल बनेगा। (प्लास्टिक के कुछ रसायन घुलकर पानी में मिल सकते हैं इसलिए काँच की बोतलें ज्यादा सुरक्षित होंगी।)
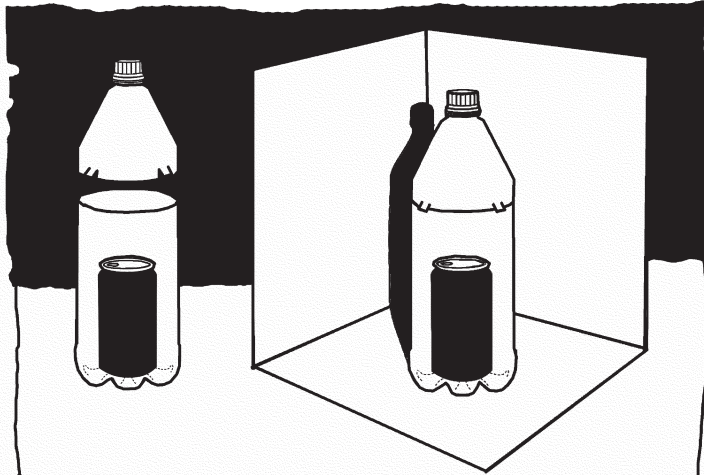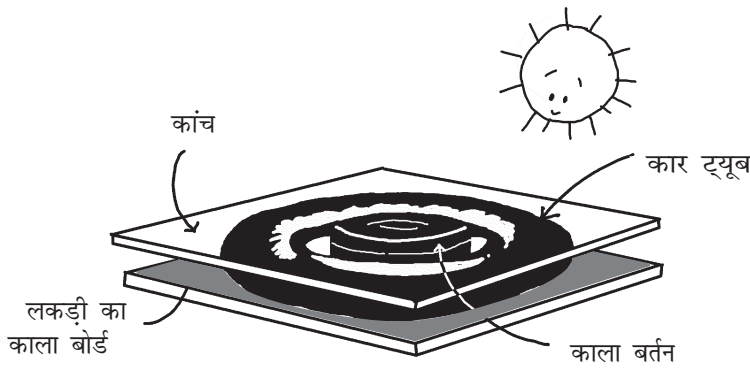
सौर-ऊर्जा से पानी शुद्ध करें

एल्युमिनियम कैन (डिब्बे) को काला रंग कर उसे साधारण नल के पानी से भरें। फिर 2-लीटर की प्लास्टिक बोतल को चित्र में दिखाए अनुसार काटें और उसमें काले डिब्बे को रखें। तीन पन्नी लगी चमकीली सतहों के बीच बोतल को बाहर धूप में रखें। कुछ घण्टों के बाद धूप पानी के सभी कीटाणुओं का हनन कर उसे पीने लायक स्वच्छ बनाएगी।

धीरे-धीरे विद्युत चलित कारें लोकप्रिय हो रही हैं। पुणे के एक युवा डिजाइनर ने आगे-पीछे सोलर-पैनल लगाकर एक हल्का सोलर-स्कूटर डिजाइन किया है।

सौर-बोतल बल्ब

बिना-लागत के इस प्रकाश बल्ब को एम.आई.टी. के कुछ शोधकर्ताओं ने डिजाइन किया। आजकल यह बहुत चर्चा में है। एक 2-लीटर की प्लास्टिक बोतल को पानी से भरकर उसे घर की छत से लटकाएं। पानी में काई न जमे इसलिए उसमें कुछ बून्दें **ब्लीच** की डालें। बोतल के ऊपरी भाग से धूप अन्दर आएगी। पानी द्वारा सूर्य की किरणें सभी दिशाओं में बिखरेंगी और घर के अन्दर बोतल 60-वॉट के बल्ब जैसे चमकेगी!
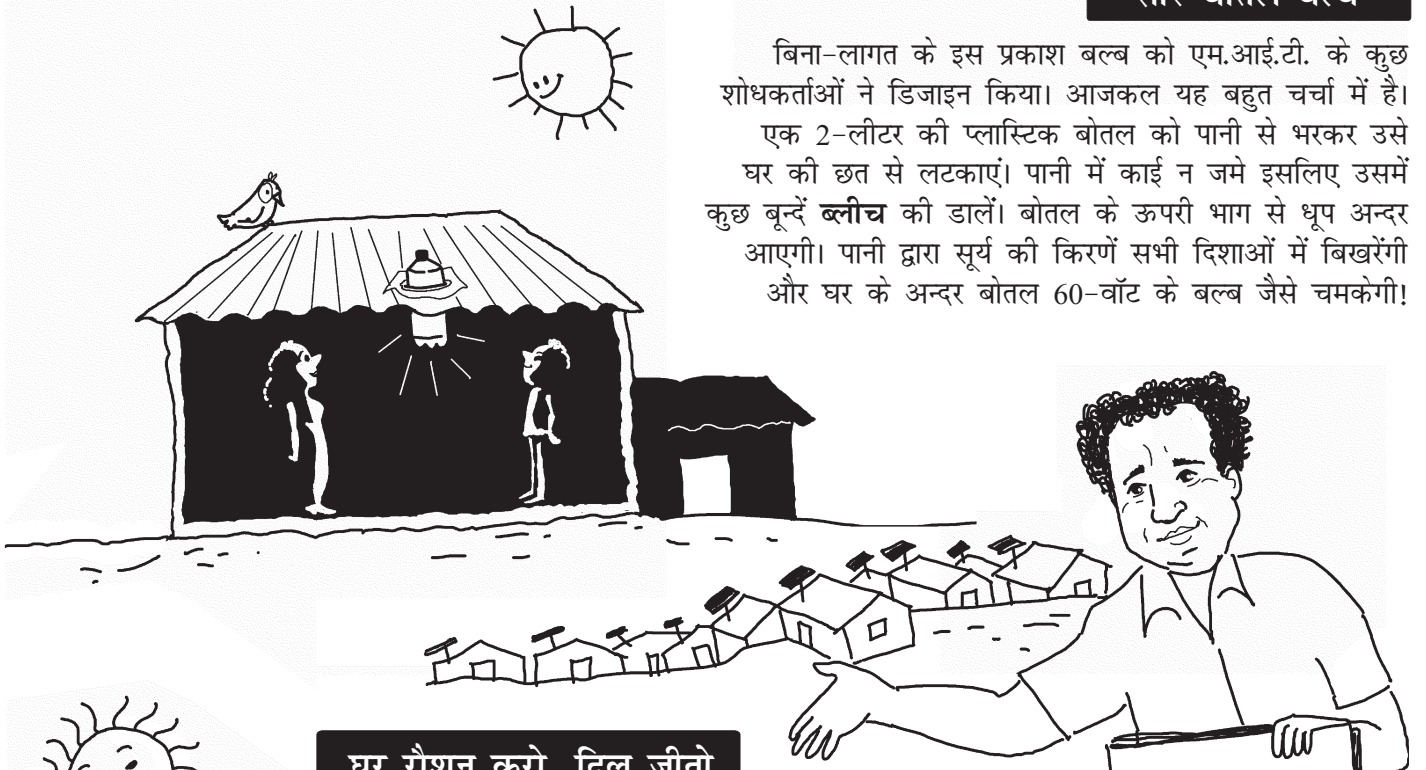
घर रौशन करो, दिल जीतो

डा. हरीश हाण्डे ने बैंगलूरू में सेल्को सोलर कम्पनी शुरू कर सवा लाख घरों को सौर-ऊर्जा से रौशन किया है। इसके लिए उन्हें 2011 के मेगसेसे पुरुस्कार से नवाजा गया। 1980 में बेयरफुट कॉलेज, तिलोनिया, राजस्थान में बंकर रॉय ने सौर-ऊर्जा को बढ़ावा दिया था।

विशाल सौर-चूल्हे

1998 में विश्व आध्यात्मिक विश्वविद्यालय, माउँट आबू, राजस्थान में एक विशाल सौर-चूल्हा स्थापित किया गया। तब से उस पर रोज़ाना 20,000 से ज्यादा लोगों का भोजन पकता है। इस तरह शिर्डी, महाराष्ट्र के प्रसिद्ध साई बाबा मंदिर में भी रोज़ हज़ारों लोग सौर-चूल्हे पर पका खाना खाते हैं।

सूर्य-एक, धर्म-अनेक
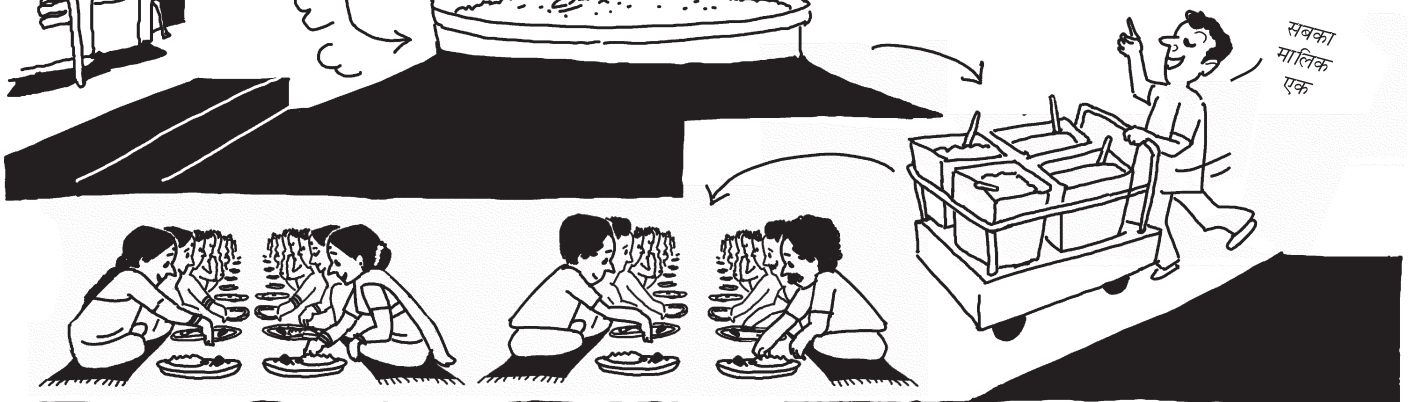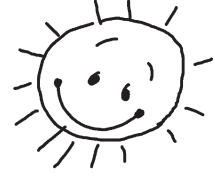
कार्ड की एक पट्टी पर कई धार्मिक चिन्ह काटें।
फिर कार्ड को बाहर धूप में जमीन से थोड़ा ऊपर रखें।
आपको जमीन पर सभी चिन्हों की परछाईयाँ दिखाई देंगी।
फिर धीरे-धीरे करके कार्ड को ऊपर उठाएँ।

धीरे-धीरे सभी चिन्हों का आकार बदलकर गोलाकार बनेगा। प्रकाश के ये गोले हमारी व्यापक समझ का प्रतीक हैं। जैसे-जैसे कार्ड ऊपर उठेगा वैसे-वैसे गोले एक-दूसरे को छूने लगेंगे। यह लोगों की एकता, समरूपता और पृथ्वी के नागरिक होने का द्योतक होगा। प्रकाश के सभी गोले असल में सूर्य के प्रतिबिम्ब हैं। वो गोल इसलिए दिखते हैं क्योंकि हमारा सूर्य गोल है।
(साभार: डा. विवेक मांटीरियो)
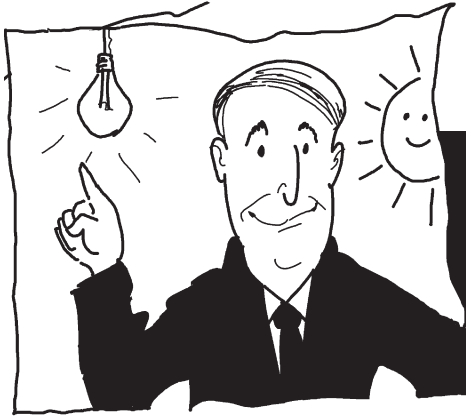
'मैं अपनी पूंजी सूर्य और सौर-ऊर्जा में निवेश करूंगा। ऊर्जा का यह कितना विलक्षण स्रोत है! मुझे उम्मीद है कि कोयले और तेल के खत्म होने से पहले ही हम सौर-ऊर्जा का दोहन शुरू करेंगे।' - **थामस ऍडीसन**

प्रकृति की नकल

पेड़ का प्रत्येक पत्ता सूर्य की धूप को भोजन में परिवर्तित कर ऊर्जा निर्माण करता है। अगर हम प्रकृति की नकल कर सोलर-पैनल्स को पेड़ पर पत्तों जैसे अधिक-से-अधिक धूप इकट्ठी करने के लिए लगाएंगे तो विद्युत पैदा करने की उनकी क्षमता बहुत कुशल होगी।

'सौर-ऊर्जा बड़े पैमाने पर अभी तक इसलिए नहीं इस्तेमाल हो रही है क्योंकि तेल कम्पनियों का अभी तक सूर्य पर स्वामित्व नहीं है।'
- रैल्फ नैडर

हमें आणविक-ऊर्जा पर पूरा और पक्का विश्वास है
अतीत में वो ऊर्जा का एक भरोसेमन्द स्रोत रहा है
और हमें आशा है कि वो भविष्य में भी हमारी जरूरतें पूरी करेगा
पर इसके लिए हमें अनेकों आणविक संयंत्रों की जरूरत नहीं पड़ेगी
केवल एक से ही हमारा काम चल जाएगा

ऐसा संयंत्र एकदम बड़ा हो और
उसकी ऊर्जा वितरण प्रणाली भी उत्तम हो और
उसकी ऊर्जा पृथ्वी के हरेक निवासी को उपलब्ध हो

उसका डिजाइन एकदम पुख्ता और जाँचा-परखा हो
और वो बिना किसी संशोधन के लम्बे अर्से तक चले

उससे कोई विषैला रेडियोधर्मी कचरा नहीं निकले
और न ही आतंकवादी उसे कभी नष्ट कर सकें

ऐसा आणविक संयंत्र पहले से ही मौजूद है
वो 15 करोड़ किलोमीटर दूर स्थित है।
वो है हमारा

सूर्य

संदर्भ

1. **ए गोल्डन थ्रेड** – 2500 **इयर्स ऑफ सोलर आर्कीटेक्चर अंड टेक्नालोजी** – केन बुटी और जॉन परलिन (1984)
2. **हाऊ डिड वी फाइन्ड ऑउट अबाउट सोलर पॉवर** – आइसिक एसीमोव
3. **द किड्स सोलर इनर्जी बुक** – टिली स्पैटगैना, मैल्कोम वैल्स
4. **डॅन इन द सन** – ऍनी हिलरमैन
5. **सन फन** – माइकेल डेली
6. **टेन लिटिल फिन्गर्स** – अरविन्द गुप्ता
7. **सोलर कुकर इंटरनेशनल वेबसाइट** http://solarcooking.org
8. **एन एब्रीवियेटिड हिस्ट्री ऑफ फॉसिल फ्यूअल्स** – पोस्ट कार्बन इंस्टिट्यूट
9. **सोलर इनर्जी – एन अवेकनिंग (फिल्म)** – डा. गोविन्द कुलकर्णी
10. **सन ऑर ऍटम** – डी. डी. कोसाम्बी (1957)
11. **सोलर एनर्जी फॉर द अंडरडेवलप्ड कन्ट्रीज** – डी. डी. कोसाम्बी (सेमिनार, 1964)
12. **द लास्ट क्वेकर इन इंडिया** – रामचन्द्र गुहा (द हिन्दू 15 अप्रैल 2007)

सूर्य नमस्कार

ऊर्जा के पण्डितों का
गहरा है गम
तेल और कोयला
होगा जल्दी खतम

रेडियोधर्मी कचरे से
जन-जीवन सड़े
जापानी न्यूक सारे
नरक में पड़े

जब बिजली कटे
तो जश्न मनाएं
और सौर-चूल्हे
पर खाना पकाएं

हवा को पकड़ें
बल्ब जलाएं
सौर-ऊर्जा से
भविष्य चमकाएं

सौर-ऊर्जा की कहानी एक सरल कॉमिक-बुक है। यह पुस्तक सौर-ऊर्जा के ऐतिहासिक विकास की एक मनोरम झाँकी पेश करती है। हरेक संस्कृति में सूर्य की पूजा-अर्चना हुई है। यूनानी, दुनिया के सबसे पहले सोलर आर्किटेक्ट (वास्तुशिल्पी) थे। उन्होंने ऐसे घर बनाए जो सर्दियों में सूर्य की धूप एकत्रित कर गर्म रह सकें। रोम के लोगों ने पहली बार खिड़कियों पर काँच लगाया। उन्होंने ग्रीनहाउस और सौर-ऊर्जा से गर्म सार्वजनिक स्नानघर भी बनाए। डेढ़-सौ वर्ष पहले खगोल वैज्ञानिक सर विलियम हरशेल ने दक्षिण अफ्रीका में तारों का अध्ययन करते समय अपना भोजन सौर-चूल्हे पर पकाया।
ईंधन के परम्परागत स्रोत - कोयला, तेल और गैस लुप्त हो रहे हैं। वो प्रदूषण, ग्रीनहाउस गैसें और पृथ्वी का तापमान बढ़ाने के लिए जिम्मेदार हैं। फूकूशिमा हादसे के बाद से आणविक ऊर्जा शक के घेरे में है।
निश्चित रूप से पवन और सौर-ऊर्जा भविष्य के ऊर्जा स्रोत हैं। भारत में हमें सूर्य देवता का प्रचुर आर्शीवाद प्राप्त है। हमें ऊर्जा के इस शाश्वत और स्वच्छ स्रोत का समुचित दोहन करना चाहिए।
चोटी के भारतीय वैज्ञानिकों को शोध कर दुनिया के सबसे सस्ते सोलर-पैनल और सबसे कुशल सौर-चूल्हे बनाने चाहिए। विकेन्द्रीकृत सौर-ऊर्जा द्वारा दूर-दराज स्थित हरेक झोपड़ी में बिजली पहुँचाई जा सकती है। सत्ता के इस विकेन्द्रीकरण और लोगों के सशक्तिकरण से गांधी जी का सपना जरूर साकार होगा।

अरविन्द गुप्ता ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (आई.आई.टी.) कानपुर से 1975 में बी.टेक. की डिग्री हासिल की। उन्होंने विज्ञान की गतिविधियों पर 15 पुस्तकें लिखी हैं, 140 पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है और दूरदर्शन पर 125 विज्ञान फिल्में पेश की हैं। उनकी पहली पुस्तक **मैचस्टिक मॉड्ल्स एण्ड अदर साइन्स एक्सपेरीमेन्टस** का 12 भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ और उसकी पाँच लाख से अधिक प्रतियाँ बिकीं। उन्हें कई पुरस्कार मिले हैं जिनमें बच्चों में विज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए भारत सरकार का सर्वप्रथम राष्ट्रीय पुरस्कार (1988), आई.आई.टी. कानपुर का डिस्टिंगुइश्ड एलुम्नस अवॉर्ड (2000), विज्ञान लोकप्रियकरण के लिए इंदिरा गांधी पुरस्कार (2008) और थर्ड वर्ल्ड एकैडमी ऑफ साइंसिस का अवॉर्ड (2010) शामिल हैं।
वर्तमान में वे पुणे स्थित आयुका के मुक्तांगन बाल विज्ञान केन्द्र में काम करते हैं। उनकी लोकप्रिय वेबसाइट arvindguptatoys.com पर खिलौनों और पुस्तकों का एक विशाल भण्डार है।

रेशमा बर्वे ने पुणे, स्थित अभिनव कला महाविद्यालय से व्यवसायिक-कला का अध्ययन किया। एक स्वतंत्र कलाकार की हैसियत से उन्होंने बच्चों की तमाम पुस्तकों को अपने चित्रों से सजाया है।